# कुमार-सुन्दर

( उपन्यास )

लेखक

रामजयश्री पाण्डेय, बी० ए०

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-मण्डल

बाज़ार सीताराम, दिल्ली ।

प्रथम-संस्करण

अक्टूबर १९३४

मूल्य १)

# एशिया की महिला क्रांति

रूस, चीन, जापान, बर्मा, फारस, भारत व अन्य देशों की महिला जाग्रति सम्बन्धी अपने ढंग की सर्वथा नवीन पुस्तक।

३६ पौंड कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य १)

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-मण्डल

बाज़ार सीताराम, दिल्ली।

मुद्रक

हरनामदास गुप्त,

भारत ( इलेक्ट्रिक ) प्रिंटिङ्ग वर्क्स

बाजार सीताराम, दिल्ली।

# प्रवचन

हमें आज पूरे एक वर्ष के बाद पाठकों की सेवा में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इस बीच में अनेकानेक कठिनाइयों और बाधाओं के कारण हमें अपना पुस्तक-प्रकाशन-कार्य प्रायः बन्द कर देना पड़ा था। किन्तु अब हम दूने उत्साह के साथ पुनः इस क्षेत्र में उतर रहे हैं। अब हमें सिन्ध के होनहर लेखक श्री रामकुमर गुप्त का सहयोग भी प्राप्त हो गया है और यह उन्हीं के उत्साह को फल है कि हम इस मास में एक साथ ही तीन पुस्तकों का प्रकाशन करने में समर्थ हो सके हैं। 'कुमार-सुन्दर' आपके सम्मुख है। राजस्थान के प्रसिद्ध पत्र-कार श्री जगदीश प्रसाद 'माथुर' लिखित 'एशियाकी-महिला-क्रांति' प्रकाशित हो चुकी है। आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री कृत 'धर्म के नाम पर !!!' प्रेस में है और सम्भवतः इस मास के अन्त तक प्रकाशित होजायेगी। इसके बाद ही हमारा विचार मध्य भारत के सुप्रसिद्ध लेखक श्री सुखसम्पत्तिराय भण्डार की गवेषणापूर्ण पुस्तक 'विशाल भारत' के प्रकाशित करने का है।

सस्ते से सस्ते दामों पर, चोटी के लेखकों द्वारा लिखित उच्च-कोटी के साहित्य के प्रकाशन का ध्येय सम्मुख रख कर हम पंजाब व दिल्ली प्रान्त में हिन्दी-प्रचार का यह महायज्ञ रचाये बैठे हैं, और इस में हमें सहयोग प्रदान करने के लिये हम हिन्दी के लेखक और पाठकों को आमंत्रित करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक पटना के नवयुवक लेखक श्री रामजयश्री पाण्डेय की कृति है। इसक भाषा व शैली सुन्दर है। इसका कथानक भी कम रोचक नहीं, और इस दृष्टि से लेखक का यह प्रथम प्रयास सफल कहा जा सकता है।

इस विषय में इससे अधिक कुछ कहना हम अनुचित समझते हैं। पुस्तक आपके हाथों में है। इसे पढ़कर आप स्वयं निर्णय कर लीजिये।

शरद पूर्णिमा
१९३४

—हरनामदास गुप्त

# कुमार-सुन्दर

[ १ ]

ग्रीष्म ऋतु थी । भोर का समय था । भगवान् भास्कर ने अभी अपना उग्ररूप धारण नहीं किया था । ओस के कण प्रातःकालीन समीर को शीतल और स्निग्ध बना रहे थे । इसी समय एक युवक ईशाण कोण से चलता हुआ महिला नदी के तट पर आ पहुंचा । महिला अमानत की सहायक नदी है । युवक ठीक उसी स्थल पर पहुंचा जिसकी दूसरी ओर जयनगर नामक राज-प्रासाद स्थित था । जय-नगर जंगलों से चतुर्दिक आछन्न था । राज-प्रासाद के चारों ओर सैन्यगृह बने थे । उनके ऊँचे एवं प्राचीनता के कारण काले कंगूरे बन-प्रदेश के ऊपर आकाश से बातें कर रहे थे ।

युवक जिस स्थान पर पहुँचा ठीक उसकी दूसरी ओर नदी के उस पार दो पुरुष बातों में निमग्न थे। वे एक ऊँचे टीले पर खड़े थे। इस कारण युवक उन्हें बहुत दूर से दीख पड़ता था। वे बीच-बीच में उसकी चाल का निरीक्षण भी कर लेते थे।

उस नवयुवक यात्री की अवस्था प्रायः उन्नीस-बीस वर्ष की होगी। उसकी मुखाकृति, तथा शारीरिक बनावट मन को मोहित करनेवाली थी। उसके चेहरे-मोहरे से पता चलता था कि वह पलामू का रहनेवाला नहीं है। उसका शरीर मोटे कोट से ढका था। पाजामे में चुन्नट थी। सिर पर एक उज्ज्वल एवं विशाल पगड़ी बँधी थी। पगड़ी के मध्य-भाग में लम्बे केशों का बँधा गुच्छा था। हाथ का कड़ा और कमर का कृपाण स्पष्टतः प्रकट कर रहे थे कि वह वीर-भूमि पञ्जाब का निवासी सिक्ख-युवक है।

महिला के तट पर वह युवक रुक गया। वह जयनगर के क़िले और कुञ्ज को शीघ्र न पहुँच सका परन्तु उन दोनों पुरुषों ने उसे भली-भांति देख लिया। ज्यों ही यात्री ने मन्द गति से महिला के करारों को लांघा कि दोनों में से एक व्यक्ति जो छोटा जान पड़ता था, बोला—"यह वही आदमी है जिसकी ताक में हम लोग थे। हो-न-हो यह पिण्डारी है। यदि यह नदी पार होने का प्रयत्न करता है तो समझो कि गया। पानी अधिक है। घाट तक पहुंचना सुगम नहीं।"

"मित्र ! वह इसका अनुभव स्वयं करे" वृद्ध व्यक्ति ने उत्तर दिया—"विधि का लिखा को मेटनहारा।"

दूसरे ने कहा—"मैं तो उसकी चाल-ढाल से समझता हूँ कि वह पिण्डारी है। वह पूछ रहा है कि नदी में कितना पानी है।"

"इस संसार में अपने निजी अनुभव के सदृश अन्य कोई ज्ञान नहीं।" वृद्ध ने उत्तर दिया—"उसे चेष्टा तो करने दो।"

जब युवक ने देखा कि उत्तर नहीं मिलता तो इस सम्मति के लक्षण मौन ने उसे अपने मार्ग में अग्रसर होने को और उत्तेजित्त किया। केवल जूते निकालने की देर थी। वह निधड़क नदी के प्रवाह में प्रविष्ट हुआ। तत्क्षण ही वृद्ध मनुष्य ने उसे सावधान होजाने के लिये चेताया; और फिर उसने अपने सहचर से धीमी आवाज़ में कहा—

"सुहृत ! तुमने भूल की है। यह पिण्डारी नहीं है।"

परन्तु युवक-सम्बन्धी यह ज्ञान उन्हें समय बीत जाने पर हुआ।

वह युवा यात्री इस जोर से तैरा और पानी के प्रवाह को इस ख़ूबी से काटता गया कि धारा वेगवती होने पर भी वह नदी के निश्चित उतरान से केवल थोड़ी ही दूर नीचे जाकर किनारे लगा।

इस समय तक दोनों अपरिचित व्यक्तियों में से छोटी

अवस्थावाला मनुष्य उसे सहायता पहुँचाने के अभिप्राय से दौड़ता हुआ किनारे तक जा पहुँचा था। दूसरा वृद्ध-पुरुष मन्द-गति से चल कर उसका अनुसरण कर रहा था। वह अपने मन में विचारने लगा—"मैंने ठीक ही सोचा था कि वह युवक जल में कभी डूब नहीं सकता।"

सामयिक सहायता नहीं मिली, इससे वह गठीला पञ्जाबी क्रोध से भर गया। उसने दौड़ते हुए सहायक को देख कर तिरस्कारपूर्ण शब्दों में कहा:—"अब आये हो! जब मैंने पूछा कि घाट पार होने योग्य है वा नहीं, तब तुमने उत्तर तक नहीं दिया ?"

"बेटा! तुम बोली तथा आकृति से कोई परदेशी जान पड़ते हो।" वृद्ध ने पहुंच कर कहा।

युवक ने उत्तर दिया—"मैंने जो गोता खाया है उसकी परवाह नहीं करता। कृपया, आप मुझे ऐसा स्थान बताइये जहाँ मैं अपने वस्त्रों को सुखा सकूँ। मेरे पास केवल यही कपड़े हैं। उन्हें साफ़-सुथरा रखना आवश्यक है।"

"ऐ लड़के, तुम्हारी समझ में हम लोग कौन हैं ?" वृद्ध ने पूछा।

"आप तो निस्सन्देह कोई सम्पन्न नागरिक होंगे।" युवक ने उत्तर दिया—"अथवा, आप सर्राफ़ जान पड़ते हैं। या आपका व्यवसाय क्रय-विक्रय सम्बन्धी है। परन्तु

आपका मित्र क़साई प्रतीत होता है, नहीं तो वह पशु-पालक अवश्य ही है।"

"तुमने हम लोगों का अनुमान प्रायः ठीक-ठीक किया है!" वृद्ध व्यक्ति ने हँस कर कहा—"मेरा कारबार रुपयों का है। उनकी संख्या का कोई ठिकाना नहीं। मेरा मित्र वैसे क़साई तो नहीं है तथापि उसके कार्य बधिक के कार्यों से बहुत कुछ समता रखते हैं। अब रही बात तुम्हारे लिए एक उचित स्थान खोजने की। इसके लिए हम लोग चेष्टा करेंगे। परन्तु इसके पूर्व यह जानना आवश्यक है। कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो। तुम जाओगे कहाँ? इन प्रश्नों पर सन्देह करने की कोई बात नहीं, क्योंकि आजकल सड़कें यात्रियों से भरी रहती हैं। वंशीधर के मेले का समय है। यह मेला केवल वर्ष भर में एक बार धूम-धाम से लगता है। दूर-दूर से यात्री भगवान् वंशीधर की सुविशाल सुवर्ण-मूर्ति का दर्शन करने आते हैं। मार्ग कुछ विकट है। बहुतेरे दर्शक घोड़ों की पीठ पर बैठे दीख पड़ते हैं। किन्तु उनसे मिल जुल कर अनेक पाखण्डी भी पार लग जाते हैं। ऊपर से राम-नाम की छाप और सैंकड़ों चूल्हों की राख लपेटे रहते हैं। किन्तु उनमें कमी पायी जाती है तो केवल दो प्रधान वस्तुओं की—ईमानदारी और ईश्वरीय डर।"

कुछ देर बाद वह परदेसी युवक बोला,—"मैं नहीं

जानता कि आज मुझे किससे बातें करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" ऐसा कहते हुए उसने अपना सिर थोड़ा झुकाया और पुनः कहने लगा—"मेरा जन्म पञ्जाब में एक प्रसिद्ध जमींदार के घर हुआ था। मैं अपने माता-पिता का सबसे छोटा पुत्र हूँ। पर इससे क्या? यहाँ यह कौन जानता है? पञ्जाबी धन कमाने के लिए दूर देशों में निकल पड़ते हैं। उनकी नाईं मैं भी यहाँ उसी उद्देश्य से आया हूँ।

वृद्ध-पुरुष हँस पड़ा। उसने कहा—"ऐ युवक! यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम्हारा देश सिंहों से भरा है। मेरे समय में पलामूं का पञ्जाब से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वहाँ के निवासी सच्चे तथा गरीब ग्रामीण हैं—बहुतेरों की ऐसी ही अवस्था है। अतः मुझे पञ्जाब के लिए पूर्ण श्रद्धा है। यदि तुम गाँव तक हम लोगों के साथ चलो तो मैं तुम्हें एक गिलास शरबत पिलाऊँ। कुछ जल-पान का भी प्रबन्ध हो सकता है। मैं जानता हूँ कि तुमने अभी डुबकी खायी है। किन्तु मौसिम गर्मी का है और मेरे देश की प्रथा अभ्यागतों को सर्वप्रथम शरबत पिलाने की है, अतः मैं वैसी व्यवस्था तुम्हारे लिये करना चाहता हूँ। अब मैं एक बात जानना चाहता हूँ। तुम्हारे हाथों में आखेट के दस्ताने हैं। इनकी क्या आवश्यकता है? क्या तुम्हें किसी ने नहीं बताया कि इन राजकीय बनों में बाज़ उड़ाना निषिद्ध है।

"यह आप क्या कहते हैं ?" युवक ने उत्तर दिया। 'इसका फल तो मुझे पहिले ही चखना पड़ा है। मैं पंजाब से एक बाज़ लेकर आया था। जब मैं मानगढ़ के पार्श्ववर्ती जङ्गलों से निकल रहा था तो मैंने 'अमानत' के दक्षिण तट पर अति नीरव-स्थल में बैठा हुआ एक विशाल जांघिल देखा। मैंने अपना बाज़ उस पर छोड़ा। उस पर राजा मानसिंह के एक वन-रक्षक की नजर पड़ गई। उसने उसे अपने तीर का लक्ष्य बना दिया। बस अब मेरे पास केवल दस्ताने बच रहे हैं।"

वृद्ध नागरिक ने पूछा—"इस पर तुमने क्या किया ?"

वह नौजवान अपना डण्डा घुमाते हुए बोला—"क्या किया; यह पूछने की बात है ? अजी, वहाँ उसकी खूब मरम्मत की। मारते-मारते उसे बे-दम कर दिया।"

इतनी बातें सुनकर नागरिक बोला—"तुम्हें शायद विदित नहीं है कि मानसिंह के हाथों में तुम पड़ जाते तो आज तुम्हारी क्या गति होती। अब तक तुम मानगढ़ के सुविशाल आँगन में वृक्ष की डालियों से लटके होते।"

युवक ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ ! मुझे ज्ञात है कि जय-नगर के राजा की भाँति मानगढ़ाधीश इस कार्य में दक्ष हैं। परन्तु यह घटना राजघाट के निकट घटित हुई थी। अतएव, मैं शीघ्रता से अमानत पार हो गया। आपने राज्य

के बाहर वह क्या कर सकते थे ? यदि वह ऐसे उग्रस्वभाव न होते तो शायद मैं वहाँ नौकरी कर लेता।"

नागरिक ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

युवक ने कहा—"विनम्र प्रश्नों का उत्तर विनम्रता से देना चाहिए। मेरे पास आप बाज़वाली थैली देखते हैं। जब से मैं पलामूँ में आया हूँ तब से लोगों ने मुझे "धोकड़ कसवा" कहना शुरू किया है। लोग इसी नाम से पुकारते हुए मेरी ओर इशारा कर बच्चों को भय दिखाते हैं। परन्तु जब मैं घर पर था तो लोग मुझे "कुमार सुन्दर" कहा करते थे। और यही मेरा सच्चा नाम है।"

"कुमार सुन्दर ! यह तो बड़ा ही सुन्दर, सुमधुर नाम है। भाई, क्या यह भी बतला सकोगे कि तुम्हारी प्रवृति किस कार्य की ओर अधिक है ?"

"सैनिक होने के अतिरिक्त मुझे और कुछ भी नहीं भाता।"

वृद्ध—"अच्छा दोस्त! तुम तो पक्के पञ्जाबी निकले। यथार्थ में तुम्हारा जन्म उच्च कुल में हुआ है। तुममें आत्मसम्मान की मात्रा प्रचुर रूप से विद्यमान है। मालूम पड़ता है कि तुम्हें रुपये की बहुत आवश्यकता है। अच्छा, अब हम लोग आगे बढ़ें।" उसने अपने साथी से कुछ जल-पान और शरबत तैयार कर रखने को कहा—( किन्तु पिण्डारियों के विषय में—कान में कुछ बुद-बुदाता है )।"

उसके साथ न हँस कर उत्तर दिया। हँसी में गम्भीरता थी। किंतु साथ-साथ कुछ चतुराई भी झलकती थी। वह शीघ्रता से आगे लपका। अब वृद्ध ने सुन्दर से कहा कि आओ, हम धीरे-धीरे चलें।

दोनों दाहिनी ओर मुड़े। अब ऐसा मार्ग पार करना था जो आगे की ओर धीरे-धीरे ऊँचा होता जाता था। बूढ़े ने कहा—"देखो रास्ता कभी मत छोड़ना! जहाँ तक सम्भव हो मार्ग के मध्य भाग का ही अवलम्बन करना।" यह सुनकर सुन्दर ने इसका कारण जानना चाहा।

बूढ़ा बोला—"व्यग्र होना उचित नहीं। धीरे-धीरे सारी बातें खुल जायँगी।"

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। किन्तु बूढ़ों की जिह्वा पर स्वभावतः बकवास लगी रहती है। वृद्ध ने इस प्रकार कहना शुरू किया—"युवक, इस समय हम लोग राजप्रासाद के निकट हैं। इस स्थान का तुम्हारे देश से बहुत अन्तर है। इसी विभेद के कारण दोनों स्थलों में दो प्रकार से चलना होगा। हम लोग जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, उसे छोड़ कर यहाँ की प्रायः सारी भूमि अनेक अस्त्र-शस्त्रों तथा जालों के गड़े रहने से भयप्रद बना दी गई है। अतएव इधर उधर मन-माने चलना खतरनाक एवं हानिकर है।"

## [ २ ]

इस तरह की बातें करते-करते सुन्दर और उसका अपरिचित साथी जयनगर-प्रासाद के समक्ष चले आये। मरहठों तथा पिंडारियों के आकस्मिक आक्रमणों से सारे देश में आतङ्क बना रहता था। ऐसे समय में कोई राजा अपना किला छोड़ कर शायद ही कभी बाहर निकलता हो। सभी राज-दुर्ग अति सावधानी से सुरक्षित रखे जाते थे। यही कारण था कि जयनगर-दुर्ग अति सुदृढ़ होने पर भी सदा सैनिकों से भरा रहता था। जयनगर, मानगढ़, तारागढ़, तथा गोंडगढ़ प्रभृति दुर्गों में जयनगर अपनी शक्ति के लिए श्रेष्ठ माना जाता था।

दुर्ग के चारों ओर तीन दीवारें थीं। प्रथम दीवार सबसे ऊँची बनी थी। उसमें स्थान-स्थान पर उन्नत कंगूरे दीख पड़ते थे। जगह-जगह पर हथियारबन्द सैनिकों के पहरे का प्रबन्ध दृष्टि-गोचर होता था। उसके बाद दूसरी दीवार थी। वह पहली से कुछ कम ऊँची थी। दूसरी दीवार भी एक तीसरी चहार-दीवारी से घिरी हुई थी।

यह सबसे बाहरी घिराव था। पहली चहार-दीवारी की नाईं बाहर की दो दीवारों में भी रक्षा के लिए प्रयोजनीय प्रायः सभी वस्तुएँ बनी हुई थीं। वृद्ध ने अपने युवा मित्र को बताया कि बाहरी चहार-दीवारी की रक्षा के लिए चतुर्दिक एक खाई खोदी गई है। यह प्रायः दस हाथ गहरी और जल से परिपूर्ण है। अस्थिवती से, जो महिला की सहायक नदियों में से एक है, पर्याप्त जल इस खाई को प्राप्त होता है। परन्तु जिस मार्ग का दोनों व्यक्ति अनुसरण कर रहे थे उससे जयनगर-प्रासाद की जड़ बहुत ही ऊँची थी। अतः सुन्दर इस खाई को स्वयं न देख सका।

इस भयङ्कर महादुर्ग में प्रवेश करने के लिए केवल एक ही मार्ग था। बाहरी दीवार के मध्य में दो सुदृढ़ मीनार दीख पड़ते थे। यह प्राचीन प्रथा थी कि किसी विशाल गढ़ की रक्षा के लिए प्रवेश-मार्ग पर दो बुर्जों का निर्माण किया जाता था। सुन्दर को भी जान पड़ा कि हो न हो यही प्रवेश-द्वार होगा। क्योंकि उसी स्थल पर उसने दो अन्य पदार्थ देखे जो केवल किसी राज-कोट के सिंहद्वार पर ही हो सकते थे। उनमें से एक तो द्वार पर गिराया हुआ लौह-निर्मित खटका था और दूसरा पेंचदार पुल। यह ऊपर उठाया हुआ था। अन्य दो दीवारों पर भी बाहर की नाईं प्रवेश-सूचक मीनार दृष्टि-गोचर होते थे। परन्तु वे बाहरी मीनारों के समान न थे।

सुन्दर के आश्चर्य की सीमा न रही। उसके साथी ने कहा कि प्रवेश-मार्ग को प्राप्त करने के लिए एक मात्र यही वक्रमार्ग है जिसका हम लोग अनुसरण कर रहे हैं। जिस प्रकार वन-प्रदेश झाड़ियों से परिपूर्ण रहता है, उसी प्रकार किले के चारों ओर की भूमि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से भरी पड़ी है। यदि कोई भी व्यक्ति किसी पथ-प्रदर्शक की सहायता के बिना इस भूमि पर पैर रखे तो वह अवश्य भीतर छिपे हुए चोर-गड़हों में गिर पड़ेगा तथा जालों में फँस जायगा। गढ़ की रक्षार्थ, इस चहुँ ओर की भूमिके अन्दर,भयङ्कर से भयङ्कर प्राणघाती हथियार दबे हुए रखे हैं। पुनःचहार-दीवारी से अनेक ऐसे पदार्थ लटक रहे हैं जो देखने में गौरैयों के खोंते से जान पड़ते हैं। उनमें अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित पहरेदार रहते हैं। उन खोंतों की बनावट ऐसी है कि पहरेदार जिधर चाहें उन्हें घुमा सकते हैं। दुर्ग-संरक्षकों की स्थिति उन खोंतों में पूर्णतः सुरक्षित है। बाहर से कोई भी उन पर लक्ष्य नहीं कर सकता। पर वहाँ से उनका निशाना बाहर के मनुष्यों पर अचूक बैठता है। यदि कोई भी व्यक्ति बिना आज्ञा प्राप्त किये दुर्गमें प्रवेश करना चाहे तो वे उसे तुरन्त वहीं से समाप्त कर दें। परन्तु, युवक,अब यह तो बताओ कि तुमने ऐसा सुदृढ़ दुर्ग कहीं अन्यत्र भी देखा है? क्या ऐसे भी लोग कहीं हैं जो इस प्रकार के सुदृढ़ प्रासादों पर आक्रमण करने में समर्थ हों?"

इन बातों को सुनकर सुन्दर ने किले को एक-टक देर तक देखा। मनोवेगों की लहरें उसके मानस-समुद्र में लहराने लगीं। आँखों में एक झिलमिलाती ज्योति चमक पड़ी। यह उक्ति अक्षरशः सत्य है कि मुखाकृति मस्तिष्क की विषयानुक्रमणिका है। अतः अवलोकन मात्र से कोई भी चतुर व्यक्ति अवश्य ताड़ जाता कि सुन्दर के मानस-मञ्च पर वीर-रस का उदय हो रहा था।

वह बोला—"प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल पर्यंत कितने ही ऐसे समृद्धिशाली एवं सुदृढ़ दुर्ग श्रीहत हो जंगली जानवरों के वासस्थान—खण्डहर—बन गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी की अयोध्या, कंस की मथुरापुरी, आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र की द्वारकापुरी, कौरवों तथा पाण्डवों का हस्तिनापुर एवं इन्द्रप्रस्थ, अशोक का पाटलीपुत्र, श्रीहर्ष का कन्नौज, पृथ्वीराज की दिल्ली, महाराणा संग्राम का चित्तौर, तथा रोहित के रोहिताश्वगढ़ के भाग्य ने समयानुकूल पलटा खाया। अब जयनगर के विषय में आप स्वयं सोच सकते हैं। मैं मानता हूँ कि जयनगर-दुर्ग सुदृढ़ तथा सुरक्षित है, परन्तु ऐसे भी माई के लाल हैं जिनके दृढ़ निश्चय और आत्मविश्वास के सामने इस राज-प्रासाद की कोई बिसात नहीं।

नीतिज्ञों का कथन है कि 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्!' पर सुन्दर कब दबनेवाला था।

उसका निर्भीक उत्तर,पाकर उस वृद्ध व्यक्ति की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने तिरस्कार-सूचक स्वर में पूछा—"तब तो तुम्हारे देश में भी ऐसे वीर होंगे जो ऐसे स्थलों पर अपनी वीरता का परिचय दे सकते हैं?"

युवक ने उत्तर दिया—"इसके विषय में मुझे कुछ कहना नहीं है। किंतु इतना तो मैं अवश्य कहूँगा कि संसार में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं जो समय आजाने पर ऐसे कार्यों से तनिक भी मुख न मोड़ेंगे।"

ऐसा उत्तर पाकर सुन्दर का साथी मुसकुराने लगा। बातें करते-करते वे प्रायः किले के निकट पहुँच गये थे कि यकायक उन्हें एक दूसरी राह लेनी पड़ी। यह जङ्गल का रास्ता था, पर प्रथम पथ से अधिक विस्तृत था।

साथी ने कहा—इस राह से हम लोग गोपालगञ्ज नामक ग्राम को पहुँचेंगे। वहाँ तुम्हारे जैसे अतिथि के भोजन एवं विश्राम का समुचित प्रबन्ध हो सकेगा। यहाँ से केवल एक कोस की दूरी पर "कोट" नाम का एक छोटा सा कस्बा है जिसके नाम पर इस परगने का नाम-करण कोट परगना रखा गया है। यह पलामू का केन्द्रस्थ परगना है और शिक्षित तथा सभ्य लोगों से सम्पन्न है।

युवक—"इस सूचना के लिए हार्दिक धन्यवाद। परन्तु मैं यहाँ अधिक न ठहरूंगा; अतः उपर्युक्त वस्तुओं को देखने का अवसर नहीं है। यदि मुझे आवश्यक भोजन और एक

लोटा जल मिल जाय तो मैं अपनी आवश्यकता के अनुसार उतना ही पर्याप्त मानूंगा। आपके कथनानुसार गोपालगञ्ज मनोहर स्थान जान पड़ता । परन्तु मुझे भोजनोपरान्त वहाँ से चल देना पड़ेगा।"

साथी—"नहीं जी! मैं समझता था कि इस ओर तुम्हें किसी मित्र से भेंट करनी ! क्या इधर तुम्हारा कोई भी अपना नहीं है?"

सुन्दर—"है क्यों नहीं। यहाँ तो मेरे मामा रहते हैं। पञ्जाब छोड़ते समय वह इतने सुन्दर थे कि शायद ही कोई उस वीर-भूमि में उनका सानी हो।"

वृद्ध—"उनका क्या नाम है? हम लोग उनका पता लगायेंगे। आजकल का समय ऐसा है कि यदि तुम किले तक उनकी खोज में जाओ तो दुर्ग-रक्षक तुम्हें गुप्तचर समझ कर पकड़ लेंगे। अतः तुम्हारा स्वयं वहाँ जाना निरापद नहीं जान पड़ता।"

युवक एक स्वर में बोला—"दोहाई मेरे पिता की! मैं, और पकड़ा जाऊँ भेदिया समझा जाकर? मैं परमात्मा को साक्षी देकर कहता हूँ कि जो इस प्रकार मेरा अपमान करेगा उसे मेरे इस वज्र लोहे का आघात अवश्य सहना पड़ेगा। किन्तु बात रही मेरे मामा के नाम की। उनके विषय में मुझे इतना कहना है कि जब वह देश में थे तो लोग उन्हें कुंवर रणधीर सिंह कहा करते

थे। मुझे मालूम नहीं कि यहाँ वह किस नाम से विख्यात हैं।"

वृद्ध—"राजकीय-पञ्जाबी संरक्षक-दल में इस संज्ञा से तीन पुरुष विभूषित हैं। क्या तुम बता सकते हो कि इन तीनों में तुम्हारे मामा कौन हैं ?"

युवक—"मैंने पहले ही निवेदन किया है कि मेरे मामा कुंअर की उपाधि से विभूषित हैं।"

वणिक्—"उनमें दो कुँअर कहलाते हैं"

सुन्दर—"किन्तु मेरे मामा को लोग 'सिंह' भी तो कहते हैं।'

वृद्ध सहचर—"नाम यथार्थ में वीरता के भावों से भरा है। शायद तुम उस मनुष्य की चर्चा कर रहे हो जिसके चेहरे पर एक बत्तौर है। इसी कारण कुँअर रणधीरसिंह को "सिंहैला" कहा जाता है। वह वास्तव में सच्चा सिपाही है। मैं यथासाध्य चेष्टा करूंगा कि उससे भेंट हो जाय, क्योंकि 'राजकीय पञ्जाबी सैनिक संरक्षक'—जिसमें वह एक है–बहुधा छावनी से बाहर नहीं आता। कभी-कभी वे बाहर आते हैं तो स्वयं महाराज की रक्षा के लिए। अच्छा, अब मैं तुमसे जानना चाहता हूँ कि क्या तुम अपने मामा के साथ उपर्युक्त दल में भर्ती होना चाहते हो ? यदि ऐसी राय हो तो अच्छा ही है, क्योंकि कुछ ही काल के अनुभव से तुम किसी उच्चपद के अधिकारी हो जाओगे। अभी तुम्हारी अवस्था भी थोड़ी है।"

सुन्दर ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"शायद मैं भी पहले ऐसा ही विचार रखता था, लेकिन अब वह विचार नहीं है।"

युवक की बातें सुन कर बूढ़ा कुछ क्रोधित हुआ और बोला—"तुम उस पद की उपेक्षा करते हो जिसके निमित्त तुम्हारे देशवासी परस्पर-ईर्ष्या रखते हैं।"

"यह उन्हें ही मुबारक हो"—गम्भीरता पूर्वक सुन्दर ने उत्तर दिया—"यदि आप सच्ची बात पूछते हों तो मैं कह देना चाहता हूँ कि यदि मुझे पर्याप्त भोजन तथा आवश्यक वस्त्र मिलते तो जयनगर की सेवकाई मुझे मंजूर थी। मैं खुली हवा में कालक्षेप करना पसन्द करता हूँ। यह प्राचीर तो मुझे अप्रिय प्रतीत होता है। वह देखो, उस वृक्ष से कई हतभागे कद्दू से लटक रहे हैं।"

पलामवी—"मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया, जरा और साफ करो।"

कुमार—"सुनिये! राजप्रासाद से कुछ ही दूर पर एक सुन्दर धनरास का वृक्ष है। उसकी शाखा से ठीक मेरे जैसा वस्त्रधारी लटक रहा है।"

वृद्ध—"हाँ, ठीक है। जवानी की आँखें कितनी तेज होती हैं। मैंने भी तो उसे देखा पर समझा कि चमगादड़ है। किन्तु, युवक! ऐसा दृश्य आश्चर्य का विषय नहीं। अजी. यदि वन में ऐसे-ऐसे फल लगते रहें तो प्रजावर्ग को

महान् लाभ हो। यह तो शासन-व्यवस्था का एक अङ्ग है। इसे देख कर अन्य लोगों को इस विषय का पता चलता है कि सड़कों पर दाव की खोज में घूमने वाले दुष्ट, अन्यायी, अत्याचारी तथा लुटेरे इसी गति को प्राप्त होते हैं। प्रजा-पीड़कों की क्या अवस्था होती है, राजद्रोहियों का कैसा सम्मान होता है—वे भलीभाँति समझ लेते हैं। उन्हें स्वयं अपने कर्तव्य-पथ से विचलित होने का अवसर नहीं मिलता तुम्हें सम्भवतः मालूम नहीं है कि यह कार्य राजनीति का एक प्रधान अङ्ग है। शान्त प्रजावर्ग के बीच अशान्ति का बीज न बोया जा सके। इसके निमित्त प्रत्येक सबल शासक-दल अपनी शक्ति का प्रयोग करके उनके हृदय में भय का सञ्चार करता है। अतः यह जो तुम देख रहे हो, हमारे शासक की शासन-पद्धति का एक उदाहरणमात्र है।"

युवक—"सम्भवतः हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच चुके हैं। यह वही गाँव जान पड़ता है जिसकी आप चर्चा करते थे। यद्यपि मैंने डुबकी खाई है तथा इस प्रदेश की कतिपय बातों से मेरा मन उद्विग्न-सा होगया है तथापि जलपान की इच्छा किसी तरह कम नहीं हुई है। पर आतिथ्य स्वीकार करने से पहले क्या मैं श्रीमान् का परिचय जान सकता हूँ?"

सहचर—"लोग मुझे मित्र-पाल कहा करते हैं। मेरी कोई उपाधि नहीं है जो तुम्हें बताऊँ। मैं बहुत सीधा-सादा

आदमी हूँ। मेरा जीवन अपनी ही धुन में बीतता जाता है।
अस्तु ! आज आपको मेरे यहाँ जल-पान करना होगा ?"

कुमार—"मित्रपाल जी ! यह कोई दुर्गुण नहीं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि हम दोनों सौभाग्यवश मित्र हो गये। आपका नाम सार्थक हो रहा है। मैं आपका दया-पूर्ण आग्रह अवश्य मानूंगा क्योंकि कल तो दो-चार कौर मिल भी गये थे, लेकिन रातसे सत्तू तक भी नहीं मिल सका। आप तो मुझे प्रतिष्ठित नागरिक जान पड़ते हैं, अतःआपका आतिथ्य ग्रहण करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

अब वृद्ध एक ओर मुँह फेर कर मुसकुराने लगा क्योंकि उसे मालूम होगया कि युवक के पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। तथापि वह किसी अपरिचित व्यक्ति के सिर निःशुल्क भोजन करना निन्दित कार्य समझता है। यही कारण था कि इन विनम्र शब्दों में वह गृहस्थ के समान ही अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहा था।

उपर्युक्त बातें करते-करते वे एक सङ्कीर्ण गली से गुजरे जो दोनों पार्श्वों में स्थित शाल वृक्षों की सघन शाखाओं से आच्छादित थी। प्रवेश-मार्ग से होकर वे एक अति विशाल आङ्गनमें पहुँचे। उस पर दृष्टिपात करने से परदेशी आगन्तुक को विदित हुआ कि समीपवर्ती दुर्ग में किसी आवश्यकता से आये हुए सरदारों तथा प्रार्थियों को रहने के लिये ही यह बनाया गया था।

मित्रपाल ने किसी को बुलाया भी नहीं। वह प्रधान प्रवेशद्वार पर भी नहीं गया। उसने एक चोरदरवाजे की सटकनी उठाई और युवक को एक विस्तृत कोठरी में ले गया। अँगीठी में कोयले धधक रहे थे और जलपान का भी प्रबन्ध किया गया था।

भोजन के अनन्तर मित्रपाल ने सुन्दर को कुछ पैसे दिये और कहा कि तुम इसी सराय में ठहरना। तुम्हारे मामा को तीसरे पहर छुट्टी मिलेगी और वह तुम से मिलने आयगा। ऐस कह कर वह वृद्ध पुरुष विदा हुआ। सराय के प्रबन्ध कर्ता ने एक ऊँची अट्टालिका पर कुमार का डेरा डलवा दिया। कुछ ही काल के पश्चात् द्वारपाल ने आकर कुमार सुन्दर को सूचना दी कि नीचे एक अश्वारोही आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

# [ ३ ]

अश्वारोही कुमार-सुन्दर के लिये उसी विस्तृत कमरे में ठहरा हुआ था जिसमें मित्रपाल ने उसका आतिथ्य-सत्कार किया था। पाठकों को स्मरण होगा कि वृद्ध-नागरिक ने कुमार से राजकीय पंजाबी संरक्षक मण्डली की चर्चा की थी। उन्हीं लोगों के हाथ में राज्यसंरक्षा की डोर थी। कहा है कि राजा जिसके हाथ में रहे सारा राज्य उसका। महाराजा जयसिंह भी रक्षा के निमित्त इसी मण्डली के आश्रित थे। अतः यह कहना अत्युक्ति-पूर्ण न होगा कि पंजाबी संरक्षक ही जयनगर राज्य के भाग्य विधाता थे। वह अश्वारोही जो कुमार के लिये खड़ा था—इन्हीं लोगों में से एक था।

'संरक्षक-मण्डली' की विशेषता धनुर्विद्या में थी। साधारणतः लोग इसके सदस्यों को तीरन्दाज कहा करते थे। इस संस्था के जन्मदाता महाराज जयसिंह के पितामह माहाराजा गोपालसिंह थे। सम्भवतः लोग सन्देह करेंगे कि महाराज गोपाल ने अन्य प्रान्त के सैनिकों को

सिंहासन के चारों ओर क्यों बैठा दिया। क्या वह राज-नीतिज्ञ कहे जा सकते हैं? उत्तर में तत्कालीन इतिहास पर थोड़ा ध्यान देना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। पलामूँ का अधिक भाग बँट-बँट कर महाराज के हाथ से निकल गया था। राज्य के कतिपय बड़े-बड़े जमींदार प्रायः स्वतन्त्र से होगये थे। उनमें अधिक लोग, मानगढ़ के जन्मदाता मानसिंह के वश में थे। यद्यपि मानगढ़ ने जयनगर का आधिपत्य नाम के लिये स्वीकार कर लिया था तथापि वह अपनी शक्ति रात-दिन बढ़ाता ही जाता था। यह भी एक मानी हुई बात है कि दो सिंह एक मांद में नहीं समा सकते। यही कारण था कि पञ्जाबियों के साथ गोपाल ने सोच समझ कर सम्बन्ध किया था। किन्तु इसका एक और मुख्य कारण था। मानगढ़ भोजपुरी के साथ वैवाहिक सूत्र से सम्बन्द्ध था। इसलिये जयनगर को संयुक्त शक्ति का भय बना रहता था। इस भय के निवारणार्थ सबल सैन्य-दल की आवश्यकता थी। अतः पञ्जाबी दल का निर्माण किया गया था। इस दल का प्रत्येक सदस्य भद्र-पुरुष समझा जाता था। इसका कारण यह था कि इस दल का महाराज के साथ सीधा सम्बन्ध था। किन्तु प्रत्येक स्वयं ही अपने प्रतिष्ठित पद का गौरव रखता था। पलामूँ की सारी जनता उसे आदर की दृष्टि से देखती थी। वह सुन्दर, सुदृढ़, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अश्वारोही

होता था। उसकी सुविधा के लिये एक पण्डित (जो प्रायः ज्योतिषी होता था), एक साईस, एक पाचक और दो भृत्य दिये जाते थे।

इस अश्वारोही की भी दशा ठीक वही थी। यह चार हाथ ऊँचा जवान था। शरीर इसका खूब सङ्गठित था। इसकी मुखाकृति स्वस्थ शारीरिक शक्ति की परिचायक थी। इस अश्वारोही का वास्तविक नाम रणधीरसिंह था किन्तु पलामूँ के लोग इसे 'सिंहैला' के नाम से अधिक जानते थे।

इसके सिक्खी वस्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र वैभवशाली थे। सिर पर एक पगड़ी बंधी थी उसमें एक अर्द्ध-चन्द्राकार कल्गी लगी थी। शरीर के प्रायः प्रत्येक भाग की रक्षा के लिये धवल लौह-वस्त्र थे। उनकी चमक प्रातःकालीन ओस-बिन्दुओं को भी मात करती थी।

कुमार सुन्दर को बचपन ही से अस्त्र-शस्त्र सञ्चालन की शिक्षा मिली थी। अतः वह रणधीर "सिंहैला" को देखकर चित्त में तनिक भी विचलित न हुआ। किन्तु वह सोचने लगा कि अभी तक मैंने किसी भी शस्त्रधारी को मामा से अधिक सुसज्जित तथा आभा पूर्ण नहीं पाया। ऐसा तर्क मन में करके उसने उसे प्रणाम किया। सिंहैले की मूँछें सिंह के समान ही तनी हुई थीं। उसने बार-बार अपने भानजे को चूमा। अन्त में पूछा—"कहो बच्चे, पञ्जाब की क्या अवस्था है?"

सुन्दर ने उत्तर दिया—"मामा जी, कोई विशेष बात नहीं है। किन्तु मुझे इस बात का हर्ष है कि आपने इतनी शीघ्रता से मुझको पहचान लिया ?"

मामा—"लड़के ! अगर तू नेत्रहाट के जङ्गलों में "खटनही" पहनकर ग्रामीण की भांति चलता तो भी मैं तुझे दूर से पहचान लेता। अच्छा, अब खोली खोल कर रखदे और सिंहगढ़का समाचार कह डाल। मेरी बहन कैसी है ?"

सुन्दर ने दुःखपूर्ण शब्दों में कहा—"मामा, वह परलोक को गई ?"

मामा ने साश्चर्य पूछा—"मर गई ? क्यों ? वह तो मुझसे पाँच वर्ष छोटी थी। वह सदैव सुख से पली थी। क्या तेरे पिता ने दूसरा विवाह भी किया ?"

भानजा—"बहुत दर्दनाक कहानी है, मामा ! साल भर की बात है कि मरहट्टों ने आक्रमण किया। और लूट मार मचा दी। सिंहगढ़ की रक्षा करते हुए मेरे पिता जी, दो चाचा, दो बड़े भाई, सात सम्बन्धी और हम लोगों के प्रायः अन्य छः भृत्य वीर गति को प्राप्त हुये। आज सिंहगढ़ में शृगाल रोदन कर रहे हैं। एक टिमटिमाते दीपक का भी प्रकाश वहाँ नहीं रहा, जो उसकी प्राचीन कीर्ति की याद दिलाते। प्रासादों की एक ईंट भी अब पूर्व रूपमें न मिलेगी जिससे सिंहगढ़ के विगत वैभव का अनुभव हो सके। वाह-रे-काल बली ! तू कैसा प्रबल है !!"

मामा—"वाह गुरु! यही तो सर्वनाश कहलाता है। अच्छा अब बोल कि इस विपत्ति में तेरी क्या अवस्था रही ?

सुन्दर—"मामा! अपने से बड़े तथा बलिष्ठ व्यक्तियों के साथ में भी युद्ध करता था। अन्ततः मुझे एक गहरी चोट आई। मैं चैतन्य-रहित हो गया। पृथ्वी पर मैं कब तक लेटा रहा, याद नहीं। परंतु दैवात् दरबार साहब अमृतसर से आए हुए एक बाबाजी ने मुझे उठा लिया। बड़ी कठिनाई से वह मरहट्टों के हाथ से बचे।

मेरी मा और उनके बीच तय हो गया कि यदि वह मेरी सेवा शुश्रुषा करके मुझे बचा लें तो मैं भी उनकी नाईं सन्त होऊँ। अब मुझे केवल एक बात कहने को रह गई है। यद्यपि उस ओर मेरी तनिक भी प्रवृत्ति न थी तथापि माँ की प्रतिज्ञा का स्मरणमात्र मुझे सन्यास लेने को बाध्य करता था। अतः मैंने गेरुआ वस्त्र धारण किये और कुछ पढ़ना-लिखना सीखा।

"अब दुःख तथा चिन्ता के मारे कई मास के पश्चात् मेरी मा भी मर गई। अतः मैंने अपने दीक्षा गुरु से निवेदन किया कि मेरा मन इस व्यवसाय में नहीं लगता। उन्होंने कृपा पूर्वक आज्ञा दे दी कि तुम, जहाँ जी चाहे, वहाँ अपनी जीविका की खोज में जा सकते हो। परन्तु मरहट्टों को यह वृत्तांत मालूम न हो, इसका प्रबन्ध करना

आवश्यक था। अतः उन्हों ने मुझे अपना बाज़ दिया जिससे लोगों को जान पड़े कि मैं पक्षी को लेकर उनके यहाँ से भाग रहा हूँ। किन्तु मैं सत्य कहता हूँ— कि मैं उनकी पूर्ण अनुमति से आया हूँ। इसकी परीक्षा के लिए उनकी मोहर-सहित यह प्रमाणपत्र साक्षी स्वरूप है।"

"अच्छा किया। बहुत अच्छा हुआ।" मामा ने कहा—"मुझे मालूम होता है कि तेरे पास जीवन-निर्वाह की सामग्री भी नहीं है।"

युवक—"केवल थोड़ी दुअन्नियाँ बच रही हैं।"

यह सुन कर सिंहैला बोला—"अति कठिन समस्या है। दुअन्नियों के बल कैसे जीवित रह सकेगा? खैर, परवाह किस बात की है। हाँ, इतना तो अवश्य कहूँगा कि द्रव्य कमाने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ेगा। कभी-कभी जान भी हथेली पर रखनी होगी! तभी लक्ष्मी प्रसन्न होगी।

कुमार ने मानों मामा के परामर्श की अवहेलना करते हुए कहा:—"मानगढ़ के कर्मचारियों का मान-दान जयनगर से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। मैं समझता हूँ कि वहाँ अधिक सम्मान का पात्र बनूंगा।"

भयंकर आकृति वाले मामा ने पुनः कहा—"मैं भी जब यहाँ आया था तो तेरे ही जैसा भोलानाथ था।

अतः मेरे विचार भी तेरे जैसे ही थे। मूर्ख की नाई बातें करने से क्या प्रयोजन।"

"जैसी आपकी आज्ञा।" सुन्दर ने उत्तर दिया—"जहाँ हो, नौकरी तो करनी ही पड़ेगी। परदेश से डरने में गुजारा नहीं है। किंतु, यदि भाग्यवश मुझे वीरता पूर्ण-कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हो जाता तो मैं नाम पैदा कर लेता।"

"अच्छा! देखता हूँ कि श्यामली-देवी* की कृपा से लड़के में कुछ जोश भी है। इसमें तो मेरे ही समान बहुत से गुण भी हैं। किन्तु अज्ञान कुछ अधिक है। जो हो! न्यायमूर्ति महाराज जयसिंह को परमात्मा दीर्घायु रक्खें। शायद ही कोई दिन खाली जाता हो कि जब उनके सेवकों को कुछ-न-कुछ पुरुषार्थ का परिचय देने का मौका न मिले। ऐसी अवस्था में धन और कीर्ति दोनों की प्राप्ति सहज और सरल है। बहती नदी में तुम भी हाथ धो लो!"

"मामा जी, आपका कथन मुझे अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है मेरे दुर्दैव ने केवल आप ही को छोड़ा है जो मुझे उचित परामर्श देकर जीवन-पथ पर अग्रसर कर सकते हैं।"

वे दोनों ऐसी बातें कर ही रहे थे कि रणधीर के कानों में समलाई के मन्दिर का घण्टा घहराता हुआ सुन पड़ा।

---

* श्यामली देवी का अपभ्रन्श "समलाई दाई है।" अब तक जयनगर में इस प्राचीन देवी की पूजा होती है।

उसने कहा; प्रासाद को लौट जाना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है। अतः अशीर्वाद लो। अपने कार्य-क्रम को शान्ति पूर्वक सोच कर स्थित कर लो। कल सवेरे आठ बजे राजप्रासाद के पेचीदे पुल के निकट उपस्थित होना और पहरेवालों से मेरी चर्चा करना। याद रहे कि सिंहद्वार-तक पहुँचते-पहुँचते राजपथ को एक पद भी इधर-उधर नहीं छोड़ना। सावधानी से काम लेना। भूमि के भीतर थोड़ी मिट्टीसे ढके ऐसे-ऐसे जाल और घातक यन्त्र हैं जिससे किसी अवयव को कट जाने में तनिक भी विलम्ब नहीं लगता। तेरा महाराज से साक्षात्कार करा दूँगा और तू स्वयं ही उन्हें पहचान लेगा। अच्छा, अब मैं जाता हूँ।

मामा के चले जाने पर कुमार सुन्दर सराय से बाहर हवाखोरी के लिये निकला। उसकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी जो एक पार्श्ववर्ती वृक्ष की शाखा से लटक रहा था। उसके प्राण-पखेरू उड़ा ही चाहते थे कि सुन्दर ने गले की रस्सी तत्क्षण काट डाली और उसे जमीन पर लिटा कर कृत्रिम रीति से सचेत करना चाहा। बात-की-बात में घोड़े पर सवार सैनिकों का एक दल वहाँ आ पहुँचा। दल का अधिपति वही व्यक्ति था जिसे सुन्दर ने मित्रपाल का साथी समझ रखा था। इस समय वह सेनापति के भेष में था। उन लोगों ने कुमार को पकड़ कर बाँधा और सेनापति ने दो जल्लादों को उसका काम तमाम करने की आज्ञा

दी। कारण यह था कि पञ्जाबी ने महाराज के न्याय में हस्ताक्षेप किया है।

कुमार ने कहा—क्या दर्शकों में कोई ऐसा नहीं है जो रणधीरसिंह "सिंहैला" को खबर दे कि आपका भानजा अत्यन्त नीचता-पूर्वक वध किया जा रहा है? उसका कथन समाप्त भी न हुआ था कि कर्मवीरसिंह नामक एक पञ्जाबी धनुर्धर ने छेड़-छाड़ की और कुमार की सहायता को तय्यार हुआ।

थोड़े ही समय के बाद "सिंहैला" भी अन्य धनुर्धरों के साथ वहाँ आ पहुँचा और उसने भानजे को मुक्त किया। अब सेना-नायक और कुंअर रणधीर में झगड़ा शुरू हुआ, किन्तु कुंअर ने यह कहकर इसे तय किया कि कुमार-सुन्दर मेरे अनुयायियों में से एक है।

इधर कुँअर ने सुन्दर से कहा कि धन्वी-दल में शीघ्र भर्ती हो जाओ नहीं तो फाँसी पड़ने में कुछ भी सन्देह नहीं। अतः सुन्दर को आनाकानी करने का मौका नहीं मिला। धन्वियों ने इस दुर्घटना के सम्बन्ध में अल्लू ठाकुर को सूचित कर देना उचित समझा। वह वैसे तो जाति का नापित था पर महाराज का विश्वस्त सचिव और मर्जीदान था। उन लोगों ने किले में लौट कर अपने पञ्जाबी नेता सरदार कर्पूरसिंह को भी इस विषय में सूचित कर दिया।

## [ ४ ]

धनुर्धरों के अनुचरों में से एक आदमी घोड़े से उतार दिया गया। खाली घोड़ा कुमार सुन्दर को मिला। जब सभी लोग खाई के निकट पहुँचे तो प्रवेश मार्ग का सरकता खुला और आकर्षक सेतु धड़ाके के साथ नीचे उतरा। एक-एक करके लोगों का प्रवेश हुआ। किंतु जब कुमार सुन्दर की बारी आई तो सन्तरियों ने उसे बर्छियों से घेर लिया। कितने ही धनुषों की प्रत्यञ्चायें चढ़ गईं। दीवारों से बंदूकों का निशाना लगाया गया। यद्यपि वह युवा-परदेशी, सैनिकों के साथ आरहा था, तथापि पहरेदार इतने चौकन्ने थे कि उसे रोक ही लिया।

कुँवर रणधीरसिंह जान बूझ कर अपने भानजे के साथ रह गया था। पूछने पर उसने यथावश्यक उत्तर दिये। बहुत हिचकिचाहट तथा विलम्ब के बाद वे लोग युवक को सबल सैनिको के संरक्षण में सरदार कपूर सिंह के पास ले गये।

सरदार कर्पूरसिंह उन वीर शिरोमणि पञ्जाबियों में अन्तिम थे जिन्होंने महाराज गोपाल सिंह की सहायता प्राणपन से की थी। इन्हीं वीर सरदारों ने भयानक युद्धों में भाग लेकर मन्द्राजियों तथा भोंसलों का आक्रमण रोका था, पिण्डारियों से प्रजा का पिण्ड छुड़ाया था, और अनार्यों के उपद्रवों को शांत कर गोपाल का राज्य निष्कण्टक-सा कर दिया था। इन्हीं योद्धाओं के बाहु-बल का परिणाम था कि रुकशेल शासक पलामू से पलायमान हुए। सरदार कर्पूरसिंह जी ने आजन्म जयनगर राज्य की सेवा बड़ी ईमानदारी और बहादुरी से की थी।

कुँअर रणधीरसिंह और कुमार-सुन्दर पहरुओं के पीछे-पीछे अपने उच्चाधिकारी के दफ्तर में गये। ये वीर सैनिक इतने अहंकारी तथा मानी थे कि किसी की परवाह नहीं करते थे। परन्तु अफसरके सामने आते ही उन्होंने अपन नम्रता का परिचय दिया। इस दृश्य तथा अफ़सर की प्रभावोत्पादक मूर्ति ने कुमार सुन्दर पर बड़ा असर डाला।

श्रीमान् कपूर सिंह जी ने किञ्चित् असन्तोष के साथ हाथ की पुस्तक एक ओर रखदी और झुँझला कर पूछा:— "अब क्या बाक़ी रह गया है? इस समय आने का क्या प्रयोजन है?"

कुँअर रणधीरसिंह ने विनीत स्वर में सारी कथा आद्योपान्त कह सुनाई तथा सरदार कपूरसिंह से रक्षा की

प्रार्थना की। कपूरसिंह ने अति शांत भाव से सभी बातें सुनीं। कुमार का वृत्तान्त सुन कर वह ताड़ गये कि उसने हृदय की सरलता से प्रेरित होकर ही अपराधी को फाँसीसे उतारा था। अतः युवक के आचरण पर उन्हें कुछ हँसी भी आई। किंतु जब उन्होंने सुना पञ्जाबी धनुर्धरों तथा सेनापति के अनुयायियों में बम-चख़ भी हो गई; तो उन्होंने धीरे से अपना सिर हिलाया।

वह बोले—"मैं तो कहते-कहते थक गया, ख़ास कर रणधीर और कर्मवीर तुम दोनों से, कि यदि परदेश में आकर निभना चाहते हो तो यहाँ के लोगों से हिल-मिल कर रहो। परदेशी को अदब और लिहाज के साथ पेश आना चाहिए। यदि चाहते हो कि इन्साफ़ के नाम पर उनकी बराबरी करें तो मुश्किल है। तुम्हें मालूम नहीं कि अपने घर में कुत्ते तथा बिल्लियाँ भी शेर होकर रहती हैं। किसी न्यायशील व्यक्ति के सामने भी जाओगे और तुम्हारी बात बिलकुल सही भी होगी तो भी वह अपने पड़ोसी का पक्ष ग्रहण करेगा। इस मूर्ख लड़के को कष्ट न उठाना पड़े, यही हम लोगों की कोशिश रहनी चाहिए। अलमारी में से रजिस्टर निकाल कर दो—जिसमें इसे भर्ती कर लिया जाय। ऐसा करने से तुम्हारे माफ़िक यह भी ख़ास ख़ास रिआयतों का हक़दार हो जायगा।"

"श्रीमान् की जैसी इच्छा"—सुन्दर ने कहा।

"यह लड़का पागल तो नहीं हो गया है !" उसके मामा ने विस्मय के साथ पूछा—"बिना आज्ञा पाये ही तुम श्रीमान से बातें करोगे ?"

"शांति, रणधीर !" कपूरसिंह ने कहा—"जो कुछ इस लड़के को कहना है, कहने दो ।"

कुमार सुन्दर ने उत्तर दिया—"यदि श्रीमान् सुनने की कृपा करें तो मुझे केवल इतना ही कहना हैं कि इससे पूर्व मैंने मामा से कहा था कि यहाँ नौकरी करने में मुझे कुछ सन्देह होता है। किन्तु अब वह सब आशङ्का सर्वथा दूर होगई। अब मैं समझ गया कि कैसे भद्र तथा अनुभवी अफ़सर के आधीन काम करना पड़ेगा। श्रीमान् की मुखाकृति पर दृष्टि डालते ही पता लग जाता है कि आप कितने उदार और न्यायप्रिय हैं ।

अवस्था बढ़ते-बढ़ते प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ मात्रा में गम्भीरता का संचार हो ही जाता है। फिर कपूरसिंहजी की तो उम्र अब ढल ही चुकी थी। आप जयनगर राज्य के एक उच्च पदाधिकारी थे शासन सुव्यवस्था की बाग-डोर का प्रधान अंश आपकी मुट्ठी में था। अतः गम्भीरता की कमी रहे तो कैसे रहे ?

आप बोले—"लड़के ! तुमने बहुत ठीक कहा। अच्छा, आज से तुम हम लोगों की सम्मानास्पद पञ्जाबी धन्वी-मण्डली में भर्ती हुए। अब से अपने मामा के झण्डे की

छत्र-छाया में रहना होगा मुझे विश्वास है कि मेरी आशाएं सफल होंगी। रणधीर, देखना कि तुम्हारा भानजा नियम पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता रहे। आजकल युद्ध की आशङ्का की जाती है। न मालूम किस समय रणक्षेत्र बर्छियों की चमक, शस्त्रों की झनकार, रणभेरी के निनाद एवं वीरों की ललकारों से गूँज उठे। अतः सदा सतर्क रहना नितान्त आवश्यक है।"

उस नये सैनिक को पदोचित वस्त्र तथा हथियारों से विभूषित करने का आयोजन किया जाने लगा। इस शीघ्रता का कारण—जैसा कि पाठकों को मालूम है—कप्तान की भड़की हुई क्रोधाग्नि ही थी।

---

## [ ५ ]

दूसरे दिन प्रातःकाल, कुमार सुन्दर ने पदोचित सभी वस्त्र धारण किये तथा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होगया। सुन्दर का मामा यह साज बाज देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था। उसकी तीव्र दृष्टि भानजे को सुचारु-रूप से सुसज्जित देखने में लगी हुई थी। नवीन रूप में 'सुन्दर' कुछ और ही होगया। यह देख कर मामा से मौन नहीं रहा गया। उसने अत्यन्त सन्तोष प्रकट किया और कहा—"सुन्दर! तुम्हारे प्रति जितनी दया की गई है, उसके बदले में तुमने विश्वस्त बन कर साहस दिखलाया तो तुम्हारे समान कर्त्तव्य परायण और सौभाग्यशाली व्यक्ति संरक्षक-मण्डली में कोई नहीं निकलेगा। इससे तुम अपने मातृ-कुल का गौरव उज्ज्वल करोगे। चलो, अब हम लोग कचहरी-चलें क्योंकि वहाँ महाराज का दर्शन होगा।"

अब कुँवर रणधीरसिंह अधिकारी का काम करने लगा। संकेत पाते ही संरक्षक-दलके सभी सैनिक चलने लगे। रणधीर ने सबों को कुछ संकेत का स्मरण कराया।

वीर सैनिक ऐसी तत्परता तथा स्फूर्ति के साथ आज्ञा पालन करते थे मानों एक दूसरे को निपुणता प्रदर्शन में परास्त करना चाहते हों। इस प्रकार सभी एक अति-विशाल एवं सुसज्जित भवन में जा खड़े हुए। वे महाराज के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगे।

सुन्दर अब तक राजकीय न्यायालयों के वैभव से पूर्णतः परिचित न था। उसके हृदय में भिन्न-भिन्न भावावलियों की उत्ताल तरंगें उठ रही थीं। किन्तु नेत्रों के सामने अब जो दृश्य आया, उसका विपरीत प्रभाव उस पर पड़ा।

महाराज के गण्यमान्य लोगों का एक दल आया। उसमें सरदार कर्पूरसिंह भी थे। आपके वस्त्र अति मूल्यवान थे। हाथ में एक चाँदी की गदा थी। उनके अतिरिक्त अन्य सब पदाधिकारी भी थे। जिनमें तारागढ़ के दौलतराय का किञ्चित उल्लेख अनावश्यक न होगा। जयनगर महाराज को आखेट का बड़ा शौक था। कल-कल नादिनी महिला नदी की दूसरी ओर नाना प्रकार के खग-मृग से आच्छन्न एक सुन्दर पर्वतीय प्रदेश था। आखेट के लिये, अस्त्र-शस्त्र-सञ्चालन में दक्ष तथा लक्ष्य में अचूक अनेक वीर नियुक्त थे। दौलतराय इन सबका नायक था। अतः लोग उसे "बूढ़ा शिकारी" कहा करते थे। वह केवल शिकारी ही नहीं था। वह किसी उच्च कुल में उत्पन्न हुआ था। अतएव वीर शिरोमणि था जिसके पिता एवं पितामह ने अनवरत

परिश्रम तथा अदम्य साहस द्वारा नवाब शाईस्ता खाँ के उपद्रवों से मातृ-भूमि की रक्षा की थी।

सरदार कर्पूरसिंह और दौलतराय के अतिरिक्त और कई व्यक्ति उस दल में उपस्थित थे। गौरगढ़ के 'बाबू-साहब' भी उनमें से एक थे। आप राजवंश के नज़दीकी सम्बन्धी भी थे। पुत्र न होने के कारण, महाराज जयसिंह इन्हें सदा राज-प्रासादमें ही रखते थे। इनके ऊपर महाराज की सदा चौकसी रहती थी। अतएव 'बाबूसाहब' कैदियों की भाँति उदास रहा करते थे। यद्यपि वे उसी विशाल राज्य-लक्ष्मी के अधिकारी होने वाले थे तथापि यह स्वतन्त्रतापहरण उनके लिये असह्य हो उठा था।

'बाबू साहब' की आयु प्रायः चौबीस-पच्चीस वर्ष की थी। उनकी मुखाकृति पर उदासी की रेखा खिंच गई थी। आप अपने कुटुम्बी दौलतराय के कन्धे पर हाथ रख कर मन्द-गति से चल रहे थे, मानों वे किसी अवश्यम्भावी अनिष्ट की आशङ्का से विह्वल-चित्त हो रहे हों। अङ्ग-अङ्ग में शिथिलता-सी छा गई थी। बात भी कुछ ऐसी थी। इन दिनों महाराज की दृष्टि उन पर विशेष रूप से रहा करती थी। इसका कारण था - छोटी राजकुमारी से उनका वैवाहिक निश्चय।

बचपन में निश्चित होगया था कि राजकुमारी ज्योत्स्ना का विवाह गौरगढ़ के 'बाबू साहब' से होगा, जो जयनगर

के अधिपति भी होंगे। ज्योत्स्ना, ज्योत्स्ना ही थी। किन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ी होने लगी, त्यों-त्यों उसका स्वास्थ्य बिगड़ता गया और युवावस्था में वह एक पीत-वर्ण की लम्बी ढाँचा सी रह गई। ज्योत्स्ना की ऐसी अवस्था देखकर "बाबू साहब" का मन अपने निश्चय से विचलित होगया। विवाह, जीवन की एक पवित्र ग्रन्थी है। उसे ग्रहण करने के पूर्व प्रत्येक युवक एवं युवती को अपना हिताहित स्वयं सोच लेने का पूर्ण अधिकार है। पर महाराज तो चटपट विवाह कर ही देना चाहते थे। चाहे "बाबू साहब" के लिये यह शादी बरबादी ही क्यों न साबित हो।

इस समुदाय में एक विचित्र व्यक्ति था। स्वभावतः वह अहंकारी था। वह कैलासमठ का महन्त था। कैलास-मठके आधीन अनेक छोटे-बड़े मठ थे। अतः आमदनी भी पूरी-पूरी थी। महन्त जी महाराज श्री जयनगर नरेश के धार्मिक मन्त्री भी थे। अतः राजकुल-पूज्य होने के कारण उनका गेरुआ आकाश में सूखता था।

महन्त 'जीवनदास' का महाराज पर बड़ा प्रभाव था। सारे कर्मचारी महन्त जी का मुँह जोहते रहते थे।

जब उपर्युक्त दल धीरे-धीरे चलकर अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर पहुँच रहा था कि महन्त ने संरक्षक दल का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया। वह गेरुआ वस्त्र का

लम्बा चोगा पहने हुए थे। सन्यास एवं त्याग की साक्षात मूर्ति जंचते थे और एक लम्बा दण्ड उनके हाथ में था। आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ चटकती थीं। वह कभी धनुर्धरों के वस्त्रादि को दोष-युक्त बताते थे तो कभी उनके सैन्य-कौशल को। परन्तु मजाल क्या कि कोई चूँ भी करे। यद्यपि किसी सैनिक के मुख से आवाज़ नहीं निकलती थी तथापि उनके मुख-मण्डल पर अशान्ति तथा घोर अश्रद्धा के चिन्ह दीख पड़ते थे। इस दुस्साहस का कारण यह था कि ये सभी अपने कार्य में अत्यन्त निपुण थे। न सजावट में कमी थी और न सैन्योचित कौशल में। किन्तु महन्तजी महाराज के हाथ सम्मान पाते थे। इस कारण प्रकटतः कोई कुछ नहीं कह सकता था।

इसी अवसर पर दौलतराय ने महाराज से पूछा—"क्या प्रजा-पालक, महाराज को विदित है कि मानगढ़ का राजदूत आया है और कहता है कि बिना हीला-हवाला पेश किये राज-सभा की बैठक की जाय, जसमें वह अपना सन्देश सुनाना चाहता है।"

ज्यों ही उनका कथन समाप्त हुआ कि एक दूसरा व्यक्ति दरबार में आ उपस्थित हुआ। इसका भी मान महाराज के यहाँ खूब था। महन्तजी के समान अगर कोई विश्वस्त पुरुष महाराज की दृष्टि में था तो यही। किन्तु महन्त के समान उसने वस्त्रादि द्वारा कपट-पूर्ण स्वाँग नहीं बनाया

था। उसका क़द छोटा था। शरीर प्रायः पीत-वर्ण था। स्थूलता का नाम नहीं। तिरछी-बाँकी पगड़ी, चोगा-चपकन से भी दूर था। केवल एक मामूली अलपके का कुर्ता, और सादी धोती, पहने था। उसके हाथ में एक झारी थी। और बाँह पर गमछा था। अतः बोध होता था कि वह राज-प्रासाद के भृत्यों में से कोई होगा। किन्तु दृष्टि बहुत तीव्र थी। उसने एक सरसरी नजर सारी सभा पर डाली वह धीरे-धीरे बिल्ली की भाँति पाँव दबा कर चलता था, उसकी सदा चेष्टा रहती थी कि आँखें अधिकतर भूमि पर रहें। शायद नम्रता के पर्दे की ओट में महाराज से जो घनिष्टता थी उसे छिपाना चाहता था।

कहावत है कि आसमान का टूटा बीच में कौन रोकेगा। महाराज उस पर अत्यन्त विश्वास करते थे। यह छिपे तो कैसे! बात असल में यह थी कि महाराज के शयनागार का भृत्य था। जाति का नापित था। महाराज का क्षौर कर्म वही करता था। महाराज की कूट-नीति में वह पूरा सहयोग देता था। लोग उसकी अनुपस्थिति में इसके प्रति अनेक अपमान-सूचक शब्दों का प्रयोग करते थे। परन्तु इससे क्या? उसके मुँह के सामने किसी को बोलने तक का साहस न होता था। इसका नाम अल्लू ठाकुर था जिससे पाठक प्रसङ्गवश पूर्व ही परिचित हो चुके हैं।

अल्लू ठाकुर दरबार-भवन में चारों ओर घूमघाम

कर फिर लौटे और भीतरी कमरे में चले गए। क्षणमात्र में पुनः वही द्वार खुला और महाराज जयसिंह दरबार में आ पहुँचे।

अन्य लोगों की भाँति कुमार सुन्दर की दृष्टी भी राजेश्वर पर पड़ी। देखते ही वह भौंचका-सा रह गया। उसके हाथ से हथियार प्रायः छूट पड़े। उसने समझ लिया कि वह रेशम का व्यापारी, जो मेरे साथ टहलता था और जिसने अपना नाम मित्रपाल बताया था—महाराज के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं था।

कुमार की ऐसी अवस्था देखकर तथा सैनिक नियम का उलंघन जानकर कुँवर रणधीरसिंह ने क्रोध पूर्ण दृष्टि डाली, जिसका परिणाम यह हुआ कि युवक सम्हल गया और उचित रीति से अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके खड़ा होगया। परन्तु जब उसने देखा कि महाराज सीधे मेरी ओर बढ़ते आते हैं, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। महाराज ने कहा—"ऐ लड़के! सुनने में आया है कि तुमने कोट परगने में आते ही हुल्लड़ मचाना शुरू कर दिया है। खैर, मैं तुम्हें इस बार क्षमा कर देता हूँ। सुना है प्रातःकाल एक मूर्ख वृद्ध वणिक् ने तुम्हें भूख-प्यास से मृत प्रायः जानकर जल-पान कराया था। यह उसकी भूल का-ही फल है। यदि मैं उसे पाऊँ तो सजा दूँ। वह पुनः कुँवर रणधीरसिंह से बोले—"सिंहैले, तुम्हारा सम्बन्धी सुन्दर है किन्तु साथ ही

क्रोधी भी। जो हो, हम लोगों को ऐसे व्यक्ति की भी आवश्यकता है। इन दिनों वीरों से अधिक काम लेना है। तुम अपने भानजे की जन्म तिथि—वर्ष, दिन, घड़ी, लग्न, मुहूर्त एवं नक्षत्र, लिखकर—अल्लू को दे देना।"

कुँअर ने साष्टाङ्ग दण्डवत किया और फिर सीधा सिपाही की भाँति खड़ा होगया। उसकी स्फूर्ति से यही सूचित होता था कि महाराज की रक्षा अथवा उनके युद्ध के निमित्त यह सदा उद्यत है। इसी बीच में कुमार सुन्दर का आश्चर्य भी जाता रहा और उसने महाराज की आकृति का विशेष प्रकार से अध्ययन किया।

महाराज के शुभागमन से कुछ ही समय पश्चात जयनगर की राजकुमारियाँ आईं। उनके साथ उनकी सहेलियाँ भी थीं। बड़ी राजकुमारी पलामू के इतिहास में 'दुलहिन साहिबा' के नाम से प्रसिद्ध थी उसका विवाह 'नावनगर' के बाबू सुरेन्द्रबन्सराय बहादुर से हुआ था। किन्तु हम लोगों को नावनगर और 'दुलहिन साहिबा' के इतिहास से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।

दोनों बहनों में छोटी बेचारी ज्योत्स्ना थी। पाठकों को स्मरण होगा कि इसी का विवाह गौरगढ़ाधीश से होना निश्चित हुआथा। वह बहुत धीरे-धीरे अपनी बहन के साथ सभा-भवन में आई। उसे पूर्ण रीति से विदित था कि उसमें उन गुणों का अभाव है, जिनका स्त्रियों में रहना अत्यावश्यक

है। यह जानकर कि गुण के कारण ही स्त्रियाँ प्रेम की भाजन बनती हैं, वह और दुखित रहती थी। जान पड़ता है कि उसकी मन्थर-गति तथा उदासीनता का यही कारण था, वह पीत-वर्ण, कृष्टगात और रुग्णा सी प्रतीत होती थी। वह प्रायः एक ओर झुकी-सी रहती थी। उसकी चाल इतनी असमान थी कि उसके कारण वह लंगड़ी सी दीख पड़ती थी।

महाराज—"सज्जनो एवं महिलाओं! अब हम लोग शीघ्र घोड़ों पर सवार हो जायँ। श्री दुर्गा जी की कृपा और परमात्मा की अनुकम्पा चाहिये। इनकी दया से आज प्रातःकालीन आखेट सफल होगा।"

दौलतराय—"महाराज! यद्यपि इस समय किसी प्रकार की छेड़-छाड़ करते मुझे भय होता है तथापि अपनी इच्छा के विरुद्ध में कुछ निवेदन करने को वाध्य हूँ। मान-गढ़ का राज-दूत राज-प्रासाद के द्वार पर उपस्थित है। वह अति शीघ्र राज-सभा में उपस्थित होना चाहता है।"

महाराज—"दौलतराय! क्या वह राज-सभा की बैठक कराना चाहता है? हमलोगोंने अल्लू से कहला भेजा था कि आज हम लोगों को अवकाश नहीं, अतः उक्त सभा की बैठक आज नहीं हो सकती। क्या आपने यह उत्तर उसे नहीं दिया? अब रही बात कल की, सो कल भी श्री देवा-धिदेव महादेव का पूजन है। परसों हम लोग च्यवपुरी

जायँगे। पर ज्योंही आवश्यक कार्यों से छुटकारा मिला कि हम लोग सहर्ष सभा करेंगे, तभी दूत का सम्वाद भी ठीक से सुना जायगा।"

दौलतराय—"प्रभो! क्रूरसिंह से इस प्रकार छुटकारा पाना कठिन है। उनके स्वामी का आदेश है कि बैठक झटपट न की जाय तो राज-प्रासाद के द्वार पर बाघ नख ठोंक देना और साहिल का काँटा लगा कर चले आना। साथ-ही उनकी ओर से यह घोषणा कर देने को कहा है कि आज से मानगढ़ ने जयनगर के आधिपत्य को मानना छोड़ दिया और अब युद्ध करने को तैय्यार है।"

जयसिंह—"ऐं! क्या ऐसी धृष्टता? आज मानगढ़ इतना प्रबल होगया कि प्राचीन आधिपत्य को नहीं मानेगा? अजी, क्या मेरा बन्धु भी ऐसा निष्ठुर होगा? नहीं दौलतराय, अब युद्ध करने में ही कुशल है। शस्त्रागार से 'जय-ध्वज' को निकाल कर आज ही फहरा दो और बोलो रणबाँकुरे महावीर की जय!"

जब महाराज यह कह रहे थे तो उनके स्वर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। वह नाक भवें इस तरह सिकोड़ रहे थे की बोलते-बोलते उनकी तीव्र काली-काली आँखें धीरे-धीरे भवों में लुप्त प्रायः हो गईं।

वीर दौलतराय बोला—"महाराज की जैसी आज्ञा। सेवक तो सदैव तैय्यार है। इससे दरबार में उपस्थित

संरक्षक-दल को ऐसा प्रोत्साहन मिला कि उस दल के प्रत्येक सदस्य ने अपने अस्त्र-शस्त्रों की धीमी किन्तु स्पष्ट झनकार से अपनी अनुमति प्रकट की। महाराज ने गौरव पूर्ण नेत्रों से एक बार चारों ओर देखा।

परन्तु यह आवेग क्षणिक था। तुरन्त ही राजनीतिक उलझनों का ध्यान हो आया। मानगढ़ से युद्ध छिड़ने वाला था। समय बड़ा ही नाजुक था। महाराज प्रतापसिंह वीर एवं विजयी शासक थे। जयसिंह के समकालीन थे। जब वह युवराज थे, तभी से पचासों संग्रामों में स्वयं वीरता का अभिनय करके अपना प्रताप प्रचुर रूप से सारे पलामूं तथा पार्श्ववर्ती देशों में फैला चुके थे। अब तो वे प्रतापगढ़ की गद्दी के पूर्ण अधिकारी थे। अतः वह अवसर की ताक में लगे रहते थे। वह यही चाहते कि जयनगर और मानगढ़ में युद्ध छिड़े तो मैं मानगढ़ की सहायता करूँ। इसका कारण स्पष्ट था। महाराज साहब की बहन श्री वसुमति देवी राजा मानसिंह को व्याही थी। प्रतापगढ़ और जयनगर के बीच में प्राचीन बैर चला आता था। प्रतापगढ़ और जयनगर के बीच "चैतन्य" नामक एक घाटी है। उस समय केवल इसी एक मार्ग के द्वारा प्रतापगढ़ का वाणिज्य-व्यापार जयनगर के समृद्ध प्रान्त से होता था। स्वभावतया ही इस पर अधिकार रखने का प्रश्न इन दोनों राज्यों के बीच में यदा-कदा उठता

रहता था। इन दिनों प्रतापगढ़ अति शक्ति-शाली राज्य था अतएव उसकी पताका चैतन्य के उच्चतम शिखर पर फहरा रही थी। घाटी हाथ से चले जाने के कारण जयनगर की अवस्था विचलित होगई थी।

महाराजा जयसिंह कुछ देर तक मन ही-मन इन समस्याओं पर विचार करते रहे। इसके बाद उन्होंने मुँह खोला तो आवाज़ में वह जोश न था। उन्होंने कहा—ईश्वर न करे जो हम लोग जान बूझ कर व्यर्थ के रक्त-पात के कारण हों। हम लोग धर्म का मर्म समझते हैं। और धर्म ही की नींव पर जयनगर स्थित है। अतः इस विपत्ति को टालने के लिये अपमान सहने के अतिरिक्त कोई और चेष्टा करनी पड़े तो भी हमलोग बाज न आयेंगे। अनावश्यक युद्ध करके प्रजाओं का विनाश करना कदापि श्रेयस्कर नहीं है। मानगढ़ का राजदूत धृष्ट तथा उद्दण्ड जान पड़ता है। शायद अपने स्वामी की आज्ञा से अधिक बढ़ कर बातें करता है। ख़ैर, हम लोग भले ही थोड़ा अपमान सहलें, किन्तु प्रिय प्रजा का रक्त-पात न होने देंगे। जाओ, मानगढ़ के दूत को हमारे सामने उपस्थित करो।

[ ६ ]

राज-प्रासाद के प्राङ्गण में तुरही प्रभृति बाजे बजने लगे। बात की बात में मानगढ़ का प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आ पहुँचा। इस बीच में राजसभा-भवन में उपस्थित सभी गण्य-मान्य लोग अपने-अपने पदाधिकार के अनुकूल आसनों पर विराजमान हुए। महाराज कन्याओं के साथ सभा के मध्य में आसनारूढ़ थे ही।

क्रूरसिंह दरबार में प्रविष्ट हुआ। यह निःशंक और प्रसिद्ध शूर-वीर था। नियम था कि राजदूत साधारण वस्त्रादि धारण करके किसी दरबार में जाते थे, परन्तु क्रूर-सिंह संग्राम की सारी तैयारियाँ करके आया था। लौह-कवच से इसका धड़ गर्दन तक ढका था। एक सेवक पीछे २ चलता था। आगे-आगे घोषणा करने के लिये 'परिचय-पत्र' लिये एक दूसरा व्यक्ति था। उसने आगे बढ़कर घुटने टेके और महाराज को वह पत्र दिया।

क्रूरसिंह के अस्त्र-शस्त्रों पर नाना प्रकार के पशुओं तथा पक्षियों के चित्र बने थे। झेलम पर सोने का पानी

चढ़ा हुआ था। वीर की रक्षा के लिए वक्षःस्थल पर लोहे की जो एक चादर थी उस पर "मान संघ" का चित्रण था। यहाँ यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि राजा मानसिंह ने अपने राज्य के वीरों का एक संघ बनाया था। इस संघ का प्रधान उद्देश्य निर्बलों और स्त्रियों की रक्षा करना था। रात में इस संघ के सदस्य इसी ताक में घूमा करते थे, कि अन्याइयों तथा अत्याचारियों को कब पकड़ पायें और कब उनका विनाश करें। यही कारण था कि मानगढ़ राज्य के अन्तर्गत इस संघ की स्थापना के कुछ ही वर्ष पश्चात् अशान्ति का नाम तक नहीं रहा। साहसी चोर-डाकुओं तक के हृदय दहलने लगे। प्रजा सुख पूर्वक जीवन यापन करने लगी। कृषि तथा वाणिज्य की वृद्धि हुई और देश तथा राज्य-कोष के सम्पन्न होने में देर न लगी। क्रूर उसी संघ का प्रभावशाली सदस्य था।

अति प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यह संस्था इस युग के लिये कोई नवीन वस्तु न थी। अति पुरातन काल में और विशेषतः मौर्य-काल में अनेक संघों का निर्माण हुआ था। वणिकों के संघ थे, खास-खास रोजगारियों के संघ थे, प्रधान-प्रधान धर्मों एवं सम्प्रदायों के संघ थे और देश तथा प्रजा-वर्ग की रक्षा के हेतु राज्य-सैन्य-संघ थे।

पत्र को निर्निमेष देखकर महाराज जयसिंह बोले—"क्रूर जी ! आइए, पधारिये, आप सरीखे वीर पुरुषों का परिचय, पत्र द्वारा आवश्यक नहीं है। क्या वीर पुरुष और पहाड़ भी संसार में कहीं छिपते हैं ? हम लोग यह भी जानते हैं कि प्रिय बन्धु मानसिंह के यहाँ आपका कितना सम्मान है।"

"यह सब महाराज की कृपा है।"

"किन्तु आप युद्ध के आवरण धारण करके क्यों आये हैं ?"

क्रूर—"प्रभो ! यह दास इस समय बहुत ही अप्रिय कार्य के सम्पादन में लगा है। अतःआशा है कि नाथ इसे कृपया क्षमा करेंगे। मुझे खेद है कि मेरा जैसा स्वागत किया गया है। मैं उसके अनुकूल विनम्रता से काम नहीं कर सकूंगा। परन्तु जो कुछ कहूँगा वह मेरे स्वामी मानगढ़ाधीश राजामानसिंह की ओर से और उनकी पूर्ण आज्ञा एवं अनुमति के अनुसार।

महाराज जयसिंह गम्भीर भाव से बोले—"मानसिंह के शब्दों में क्रूरसिंह को क्या कहना है ? उन्हें यह बात भूल न जाना चाहिये कि वह ऐसे व्यक्ति के सामने खड़े हैं जो उनके स्वामी का भी स्वामी है।"

क्रूर ने झुक कर अभिवादन किय और जोर से कहा—"महाराज ! श्रीमान् के कर्मचारियों ने मानगढ़ की सीमा पर अनेक अत्याचार किये हैं और उपद्रव मचाया है। अतः अब

दूसरी बार राजा मानसिंह ने उन अपराधों की सूची भेजी है। अब जाँच सम्बन्धी पहली बात यह है कि श्रीमान् उन उपद्रवों तथा हानियों के बदले तावान देने को तैयार हैं या नहीं ?"

महाराज ने उस निवेदन पत्र पर इधर उधर नजार दौड़ाई जो उनके सामने रखा गया था। उन्होंने कहा—"अजी, ये सभी बातें तो इस सभा के समक्ष पहले ही से पेश थीं। जितने अत्याचारों का यहाँ उल्लेख किया गया है उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो मेरी प्रजा द्वारा सहे गये हैं—कुछ आधार रहित हैं। बहुतों का बदला राजा मानसिंह की सेनाओं ने ले लिया है। इतने पर भी यदि कुछ ऐसी घटनायें हों जिनका शुमार इस सूची में नहीं किया गया हो तो हम लोग उनके लिये तावान देने को तैय्यार हैं। परन्तु यह प्रमाणित करना नितान्त आवश्यक है कि हम लोगों से पड़ोसी को सचमुच क्षति सहनी पड़ी है। हाँ, इतना हम अवश्य कहेंगे कि यह अत्याचार' किये भी गये हों तो हमारी अनुमति से नहीं। हमारी तो इसके विरुद्ध कड़ी आज्ञा है।"

राजदूत ने उत्तर दिया—"मैं श्रीमान् का वक्तव्य अपने प्रजा-वत्सल राजा साहब को सुनाऊँगा। परन्तु सच पूछा जाय तो कहना होगा कि यह उत्तर सन्तोष जनक नहीं है। मुझे सन्देह होता है कि इस उत्तर से अब जयनगर और मानगढ़ की परस्पर मैत्री टूट जायेगी।

"यदि ऐसा है तो यही सही ?" महाराज ने झुँझला कर कहा —"तुम्हारे राजा ने अपशब्दों का प्रयोग किया है, अत्याचारों का स्मरण नहीं दिलाया है। और हमने कितना विनम्र उत्तर दिया इससे यह न समझो कि तुम्हारे मालिक के सैन्य-बल के डर से ऐसा किया गया है बात यह है कि हम शान्ति बनाये रखना चाहते हैं। अब बोलो, और क्या कहना है ?"

"हमारे महाराज की दूसरी मांग यह है" राजदूत ने कहा —"कि श्रीमान गढ़वा, हैदरनगर तथा जपला आदि शहरों से अपना गुप्त सम्बन्ध छोड़ दें। मेरे मालिक की प्रार्थना है कि श्रीमान् उन गुप्तचरों को लौटा लें, जिनके द्वारा रङ्कानगर आदि पलामूँ के दक्षिण तथा पश्चिमी भागों में रहने वाली शांति प्रिय प्रजाओं के बीच अशांति फैलाई जा रही है। यह बात श्रीमान् से छिपी नहीं है कि मेरे स्वामी का इन प्रदेशों से क्या सम्बन्ध है।

पुनः मेरे राजा के राज्य में स्थान-स्थान पर अशांति उत्पन्न करके बहुत से राजद्रोही भाग गये हैं। उनमें से अनेक आपके राज्य में आकर अत्यन्त सुख पूर्वक जयनगर, कोट, कुन्दरी, बारी तथा शाहपुर आदि प्रसिद्ध गाँवों में वास कर रहे हैं। आप उन्हें अपने राज्य से निर्वासित कर दें, या उन्हें मानगढ़ भेज दें जिससे उन्हें उचित दण्ड दिया जा सके।

"मानगढ़ के राजा से कह देना" महाराज ने उत्तर दिया- "कि मैं कपट व्यवहार नहीं जानता पलामूँ के दक्षिणी तथा पश्चिमी प्रदेशोंके विषयमें मुझे इतना ही कहना है कि मेरी प्रजा का वहां की जनता से स्पष्ट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध वाणिज्य व्योपारादि द्वारा परस्पर लाभ उठाने के उद्देश्य से स्थापित किया गया है। इस सम्पर्क को रोकना मानगढ़ और जयनगर दोनों ही राज्यों की प्रजाओं को हानि पहुँचाने के बराबर होगा। तुमने मेरा उत्तर सुन ही लिया, अब आगे बढ़ो।"

क्रूर—"भगवन्! ऐसे-ऐसे अत्याचार किये गये हैं जिनके प्रमाण की जरूरत ही नहीं है। किन्तु आप उन्हें ठीक मानने को तैयार नहीं हैं। अतः पहले की भांति यह उत्तर भी साफ स्वीकृति के योग्य नहीं है। मुझे कहते हुए दुःख होता है, पर क्या किया जाय! मानगढ़ाधीश यह भी चाहते हैं, कि आप कृष्णापुरी की अधिकारिणी आशाबाला को उसकी सम्बन्धिनी हेमांगिनी के साथ सैनिकों की संरक्षा में उनके पास अति शीघ्र भेज दें। आपको पूर्णतया विदित है, कि आशाबाला का राज्य मानगढ़ के अन्तर्गत है। अतएव, संरक्षक तथा अभिभावक की हैसियत से मेरे राजा साहब उस पर कुछ जिम्मेवारी रखना चाहते थे, किन्तु उसे यह बात नापसन्द आई, और वह वहाँ से भाग निकली। जयनगर के महाराज ने गुप्त रीति से उसे आश्रय दिया है। मैं महाराज की आज्ञा के लिये पुनः एक बार ठहरता हूँ"

"तुमने अच्छा किया, कि अपना सन्देश सुबह-सबेरे सुनाना प्रारम्भ किया।" महाराज ने तिरस्कार-सूचक शब्दों में कहा—"शायद तुम्हारा ऐसा उद्देश्य हो, कि तुम्हारे राजा की मूर्खता से जितने आश्रित भाग गये हों, उन सबों के कार्यों का उत्तरदायित्व मुझ पर है। यदि यह बात है, तो सन्ध्या हो जायगी, और नाम शायद तब भी समाप्त न होंगे। कौन कह सकता है, कि ये महिलाएं मेरे राज्य में हैं? अगर ऐसी बात हो भी, तो कौन प्रमाण देगा, कि वे मेरी अनुमति एवं सहानुभूति से भागकर यहाँ आई हैं? क्या कोई कह सकता है, कि मैंने उनकी रक्षा करने का प्रण किया है? इतना ही नहीं; क्या कोई व्यक्ति यह कह सकता है, कि यदि वे जयनगर राज्य में हैं, तो उनका वास-स्थान मुझे ज्ञात है?"

"महाराज, कृपया सुनें।" क्रूर ने कहा—"इस बात की साक्षी देनेवाला मुझे मिल गया था। उसने इस क़िले के निकटस्थ कुमुदनी-नामक सराय में इन भगोड़ी स्त्रियों को देखा था। आप उस समय एक साधारण नागरिक के वेष में थे। उन लोगों ने उसे आपके समक्ष नगर तथा रंका आदि प्रदेशों में रहनेवाले मित्रों के लिये कई पत्र दिये, और ज़बानी समाचार भी भेजा, जिन्हें उसने राजा मान-सिंह के हाथों तथा कानों तक क्रमशः पहुँचाया।"

इतने पर महाराज का पारा चढ़ गया, और वह

बोले—"लाओ, उसे मेरे सामने उपस्थित करो ! मैं देखना चाहता हूँ, कि वह कौन-सा व्यक्ति है; जो इस तरह सफ़ेद झूठ बोलता है ?"

क्रूर ने कहा—"महाराज, आप जानते हैं, कि वह बेचारा अब जीवित नहीं रहा। जब वह जीवित था, तो लोग उसे 'जीमूत-वाहन' कहा करते थे। उसने आशाबाला तथा हेमाँगिनी के सम्बन्ध में भरी सभा में राजा साहब से कहा था। वह अभी साक्षी देता, पर मुझे पता लगा है, कि कल-ही आपके कप्तान साहब ने उसे प्राणदण्ड दे दिया।"

महाराज—"हे परमात्मन् ! मेरे ऊपर कितने अपराध लगाये जा रहे हैं ! इन लांछनों को सुनकर मुझे क्रोध के बदले हँसी आती है। मानों मेरा कप्तान और अन्य सैनिक रात-दिन यही करते रहते हैं। चारों ओर हत्यारों को प्राण-दण्ड दिया जाता है। क्रूर ! मेरे भाई मान से कह देना, कि यदि वह ऐसे किसी आदमी को साथी बनाना चाहते हैं, तो अच्छा होगा कि वह उन्हें अपने ही राज्य में रोक रक्खें। यहाँ आने से तो उसकी वैसी ही दुर्दशा की जायगी, जैसी करनी चाहिये।"

राजदूत अब की बार कुछ अधिक अनादर-सूचक स्वर में बोला—"महाराज, मेरे स्वामी को ऐसी प्रजा की दरकार नहीं। उनका नाम 'मान' है। मान 'मान' के लिये आन पर मिट जाते हैं। वह अपने पड़ोसियों के भाग्य एवं

भविष्य जानने को न डाइन पूजते हैं, और न दक्षिणी ब्राह्मणों की राय लेते हैं।.........."

वह बोल ही रहा था कि बीच ही में, महाराज ने डपटकर कहा—"अब तक हम किसी तरह धैर्य धारण कर सुनते रहे, परन्तु अब एक शब्द भी सुनना असह्य है। तुम्हारा सन्देश कुछ भी हो, किन्तु तुम उसकी सीमा लांघ रहे हो। तुम्हारी नीचता के व्यवहार से पता चलता है, कि तुम्हारा एक-मात्र उद्देश्य हम लोगों का अपमान करना है। हम लोग इस बात की ख़बर लेकर अपनी ओर से किसी आदमी को मानसिंह के पास भेजेंगे।"

क्रूर "केवल इतना ही काफ़ी नहीं है। अभी तो बहुत-कुछ सुनाना बाक़ी है। मेदिनी कुलोद्भव, जयनगर-नरेश महाराज जयसिंह! कृपया सुनिये!—इस सभा में उपस्थित जितने राजा, बाबू, ठाकुर हैं, वे सुनें। जितने भले तथा सज्जन व्यक्ति हैं वे भी सुनें। और तुम त्रिपुरारी-दत्त, मैं जो उच्चारण करता हूँ, उसकी घोषणा उच्च-स्वर से करो। मैं सरदार क्रूरसिंह शाहदेव, कौरिद का ज़मींदार, गोंडवाने का जागीरदार तथा लोकमान्य राजकीय मान-संघ का प्रधान सदस्य, तत्रभवान् वीर-विक्रम-शाह सर्व-शक्तिशाली राजा मानसिंह की ओर से—जो ईश्वरेच्छा से मानगढ़, बड़गढ़, विश्रामपुर, छत्रपुर लक्ष्मणनगर तथा गर्दभनगर का राजा 'पुण्यदग्ध' और 'पाटल' परगनों के

स्वामी हरिहर गंज, पाँकी, बासिमठ, गौरभूमि और जीवभूमि के ठाकुर, सूदमनागपुर के सरदार, तथा मङ्गलपुर, नरसिंहपुर और ब्रह्माण्डपुरी आदि रियासतों के अधिपति हैं—आप जयनगर के महाराजा जयसिंह को सूचित करता हूँ कि आपके द्वारा अथवा आपकी सहायता, सलाह और बहकावे से उपर्युक्त राजा साहब तथा उनकी प्रिय प्रजा के साथ जो अत्याचार किये गये हैं, जो भूल की गई हैं, तथा उन्हें जितनी हानियाँ पहुँचाई गई हैं, उनके कारण राजा साहब मेरे द्वारा आपके अधिपत्य और श्रेष्ठत्व का पूर्ण परित्याग करते हैं, आपको मिथ्यावादी तथा विश्वासघातक समझते हैं। और आपको राजा एवं मनुष्य कहना घृणास्पद मानते हैं। लीजिये यह दस्तान मेरे कथन का साक्षी स्वरूप आपके सामने है। आज से आपके यहाँ शाहिल का काँटा लगा।" ऐसा कह कर उसने बाहिने हाथ से बाघनख निकाल सभा-भवन में पटक दिया।

जब तक ऐसी आश्चर्यजनक घटना राज-दरबार में होती रही चारों ओर निस्तब्धता छाई रही। परन्तु ज्यों ही बाघनख के पटकने की झनक सुन पड़ी और त्रिपुरारीदत्त ने अपने शब्दों में क्रूर के कथन की घोषणा समाप्त की कि कर्पूरसिंह, दौलतराय तथा कुँअर आदि वीर अपने-अपने अधिकार के अनुकूल आपस में कहने लगे कि मैं युद्ध का बीड़ा उठाऊँगा। इनके अतिरिक्त जो वीरगण

राज-सभा में उपस्थित थे, चिल्ला उठे कि इस बदमाश को काट डालो। टुकड़े-टुकड़े कर दो। यह ऐसा धृष्ट है कि खुद जयनगर के राज-प्रासाद में आकर महाराज को अपमानित करने का साहस करता है।

किन्तु महाराज ने उस तुमुलनाद को अपने जलद गम्भीर शब्दों-द्वारा शान्त कर दिया। उन्होंने कहा—"मेरे सभासदो! आप शान्ति धारण करें। सावधान! इस आदमी का एक बाल भी बाँका न होने पाये। बाघनख को छूने की आवश्यकता नहीं है। क्रूर जी; आप कैसे आदमी हैं? क्या आपका जीवन सर्वथा सुरक्षित है कि आसानी से चुनौती दे डालते हैं। क्या आपके राजा सचमुच लड़ाई पर तुल गये हैं? इसीलिये शायद इस फरेब से काम लिया है।"

"महाराज वह आप जैसे राजाओं से कहीं अच्छे हैं। क्या आप भूल गये हैं कि जब आप जयनगर के युवराज मात्र थे और अपने पिता के डरसे दर-दर मारे-मारे फिरते थे—कहीं शरण नहीं मिलती थी—तो इस 'मान' ने शरण देकर आपको सम्मानित किया था? संसार बड़ा ही कृतघ्न है। दिन निकल जाने पर दुःख विसर जाता है। आज आप उसी उपकार का बदला इस प्रकार चुका रहे हैं। मैंने अपने स्वामी के आदेशों का पूर्ण रीति से पालन किया। अब मेरा काम होगया—मैं विदा होता ।"

उपर्युक्त बातें कहता हुआ क्रूर सभा-भवन से निकल गया। उसने साधारण शिष्टाचार का भी ध्यान न रखा।

क्रूर के चले जाने पर सबों ने सोच-विचार करना प्रारम्भ किया। अन्ततः सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि महाराज जो कहें वही होगा। महाराज ने महन्त जी को बिछिया लेकर क्रूर के पीछे भेजा। अपनी विलक्षण बुद्धि के द्वारा काम लेकर महन्त जी उद्देश्य सिद्धि में सफल हुए। उन्होंने बाघनख क्रूर को लौटा दिया और कहा—'कृपया एक दिन और भी ठहरें। महाराज पुनः आपकी प्रार्थना पर विचार करेंगे।" जब महाराज को विदित हुआ कि क्रूर को मना लिया गया है तो वह अति प्रसन्न हुए और महन्त, दौलतराय, कुमार-सुन्दर तथा अन्य शूर वीरों को सङ्ग लेकर शूकर के आखेट को गये।

---

एक भयानक जङ्गली शूकर मिला। महाराज ने वीरता से उसका पीछा किया। संयोग की बात, मृग छौना भी उसी वक्त निकल पड़ा। प्रधान शूकर ने उत्तर की ओर राह ली। परन्तु छौना पश्चिम से पूर्व दिशा को भागा। लोगों ने समझा असली आखेट का जन्तु उसी ओर गया है। अतः अनेक शिकारी कुत्ते तथा दौलतराय आदि कुशल शिकारी भी उसी ओर घोड़े फुदकाते निकल पड़े। जब बूढ़े शिकारी की यह दशा थी तो दूसरों का क्या पूछना था। केवल पाँच-छः शिकारी कुत्ते शूकर की ओर लपके जा रहे थे। महाराज का घोड़ा बड़ा ही तेज़ और सबल था। उनके अस्त्र-शस्त्र भी चमकते हुए थे। वह एड़ी मारते हुए प्रधान जन्तु का पीछा करते गये और इस प्रकार शिकारियों की दृष्टि से ओझल हो गये। भागते-भागते शूकर एक दल-दल में धँस गया। वहाँ महाराज के अतिरिक्त कोई न था।

जयसिंह ने वीरता और आखेट-कौशल का पूर्ण परिचय दिया। अकेले होने पर भी यह उस भयङ्कर जन्तु के निकट पहुँच गए। महाराज की जान सब तरह से सङ्कट में थी। शूकर वृहत्काय था। प्राण-रक्षा की अन्तिम चेष्टा में वह विह्वल होगया था। दो-चार कुत्ते जो उस पर लपक रहे थे, मारे डर के नजदीक तक न पहुँचते थे। यह "एकाकी" सुअर था जो दल बाँध कर नहीं चलता। यह मद-मत्त अकेला भ्रमण करता है। इसके दाँत विशाल तथा पैने-पैने होते हैं। इस सुअर की आँखें क्रोध से रक्त-वर्ण हो रही थीं। ऐसी अवस्था में जयसिंह ने उस पर बर्छी चलाई, परन्तु घोड़ा कुछ बिदक गया और बर्छी की मार से न वह शूकर मर सका और न घायल ही हुआ। उसकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्ज्वलित हो उठी। महाराज ने घोड़े को बढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया पर सारी चेष्टायें विफल हो गईं। अब उनसे नहीं रहा गया। और वह नीचे उतर कर दोनों हाथों में दो-दो हत्थी नङ्गी तलवारें लेकर दौड़ पड़े। तलवारें छोटी थीं किन्तु तीक्ष्ण। वे सीधी थीं पर नोकीली। ऐसे ही समय के लिए शिकारी वैसी तलवारें बाँधते थे। शूकर ने कुत्तों को तो छोड़ दिया और मानवी शत्रु पर टूट पड़ा। महाराज डटकर खड़े हो गए। दोनों तलवारों को दृढ़ता पूर्वक उठाया। शूकर उन पर कूदना ही चाहता था। एक तो तलवारों की तीक्ष्णता और दूसरे

क्रोधान्ध शूकर का प्रबल वेग। परिणाम स्पष्ट था। तलवारें उसके गले में नहीं तो वक्षःस्थल के अन्तस्तल तक अवश्य ही पहुँच जाती। किन्तु जमीन चिकनी थी। फलतः महाराज के पैर ठीक उसी समय फिसल गये। तलवारें शूकर की छाती न छेद सकीं—उसके कन्धों को छूकर रह गईं। महाराज जयसिंह मुँह के बल पृथ्वी पर गिर पड़े। हिंस्र पशु भी जोश में कुछ आगे बढ़ गया। यह अच्छा ही हुआ, यदि महाराज न गिरते तो शूकर उनकी जाँघ फाड़ डालता, उसके दाँतों से केवल ऊपरी वस्त्र को ही आघात पहुँचा। पर महाराज सम्भल कर उठ ही रहे थे कि शूकर पुनः आक्रमण करने की इच्छा से पीछे फिरा। अब उनके प्राण सङ्कट में आ पड़े थे। इसी शोचनीय अवस्था में कुमार सुन्दर आ धमका और अपनी बर्छी से उस वन्य-जन्तु का शरीर आर-पार वेध दिया। वह आखेट का पीछा करते समय सबसे पीछे छूट गया था। किन्तु भाग्यवश उसने महाराज के बिगुल की आवाज सुनली और उसे पहचान लिया। अतएव उसे सच्चे मार्ग का अनुसरण करते भ्रम न हो सका।

इसी बीच में महाराज भी संभल कर खड़े होगए थे। वह सुन्दर की सहायता को पहुँचे और ऐसी सफाई का हाथ मारा कि पशु का सिर धड़ से अलग होगया। वह कुमार से एक बात भी न बोले। मृतक पशु को पुनः वित्त

से नापा। सिर की पगड़ी उतारी। उसे समीप की झाड़ी में लटका दिया। अब वह सुन्दर की ओर फिरे और बोले—"पञ्जाबी युवक; तुम्हारे आखेट-सम्बन्धी जीवन का अध्याय बहुत अच्छी प्रकार से आरम्भ हुआ है। तुम बोलते क्यों नहीं ? राज-दरबार में आकर लोग धृष्ट तथा जोशीले हो जाते हैं, किन्तु जान पड़ता है कि तुम धृष्टता तथा जोश दोनों ही खो बैठे।

कुमार सुन्दर अति चतुर था। पञ्जाब के वायु-मण्डल में पालित किसी भी नौजवान से वह बुद्धि में न्यून न था। यह जानता था कि मेरे स्वामी अति भयङ्कर स्वभाव वाले हैं। अतः वह बहुत डर-डर कर चलता था। महाराज के उपर्युक्त बचनों से जान पड़ा कि वह उसे पूर्ण परिचय से लाभ उठाने का अवसर दे रहे हैं। परन्तु उसके मन में विश्वास न बैठा, वरन कुछ भय का सञ्चार हुआ। अतः वह खूब सोच समझ कर दो-चार बातें बोला। उसने कहा—"प्रभो; यदि मुझे बोलने की आज्ञा दी जाती है तो मैं केवल एक छोटी-सी प्रार्थना करना चाहता हूँ। कल सुबह मुझे तनिक भी मालूम न था कि आप कौन हैं। इसी कारण मैंने आपके साथ अत्यन्त निर्भीकता का व्यवहार किया था। इसका प्रधान कारण मेरा ग्रामीण जीवन था। ग्रामीणों की प्रकृति प्रायः सरल होती है। उनमें भी अब धोखे बाज और नीच प्रकृति के लोग होने लगे हैं।

किन्तु अधिक संख्या ऐसे लोगों की है, जो विनम्र और सरल स्वभाववाले होते हैं वे हृदय के भावों को सच्चे रूप में प्रकट करने से नहीं हिचकते। मैंने भी धृष्टता तथा उद्दण्डता से काम लिया। अतः करबद्ध विनय है, कि सेवक को दया कर क्षमा प्रदान करेंगे।"

महाराज—"इन बातों को छोड़ो। तुम साहसी तथा चतुर हो! अतः मैं तुम्हें निर्भीक उद्दण्डता के लिये क्षमा प्रदान करता हूँ। मुझे सब से बढ़कर आश्चर्य उस समय हुआ, और *मन-ही-मन मैंने तुम्हारी प्रशंसा भी की*, जब तुमने मेरे साथी त्रिलोचन का व्यवसाय प्रायः ठीक-ठीक बता दिया। मुझे यह भी मालूम है, कि इसी बीच में तुम्हें स्वयं उसका उदाहरण भी मिल गया। मैं तुम्हें चेताये देता हूँ कि उससे सदा सावधान रहना। वह विचित्र प्रकार का व्यापारी है। उसके यहाँ केवल कठोर हथकड़ियाँ बिकती हैं। घोड़े की पीठ पर चढ़ने में मेरी सहायता करो। मैं तुम्हारी भलाई करूँगा। मुझे छोड़कर और किसी का भरोसा न रखना। अपने मामा अथवा कर्पूरसिंह पर भी निर्भर न रहना। इस शूकर को मारने में तुमने जो सामयिक सहायता पहुँचाई है—उसकी चर्चा किसी से न करना, नहीं तो लोग ईर्ष्या से तुम्हें अहंकारी कहेंगे।"

इसके बाद महाराज ने बिगुल बजाई। उसे सुनकर दौलतराय और अन्य कई अश्वारोही तथा अनुचर पहुँच

गये। सबों ने महाराज को इस सफलता के लिये हार्दिक धन्यवाद दिया। राजा ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने कुमार-सुन्दर की सहायता का शायद ही उल्लेख किया हो। ठीक कहा है, कि लड़े सिपाही नाम सरदार का। बड़े-बड़े पदाधिकारी जब शिकार करने लगते हैं, तो उनकी भी यही हालत रहती है। शिकार मारे कोई, नाम हो उनका। मीर शिकारी बाज़ उड़ा उड़ाकर पक्षियों का ढेर कर देते हैं। किन्तु जब उनकी गिनती होने लगती है, तो नाम होता है सरदार का। उन बेचारों को कोई पूछता तक नहीं।

महाराज ने दौलतराय को आज्ञा दी कि मृतक पशु को समलाईमठ को भेज देना, पर्व के अवसर पर यह वहाँ काम देगा। महन्तजी को स्मरण दिला देना कि देवी की पूजा-अर्चना में वह मेरी ओर से भी प्रार्थना करें।"

× × × ×

इस आखेट के पश्चात् कुमार-सुन्दर की उन्नति हुई। वह संरक्षक-मण्डली के पूरे धन्वी के पद को प्राप्त हुआ। अब वह रणधीरसिंह के समान वाले पद को विभूषित करने लगा। अल्लू ठाकुर ने कुमार को सूचना दी, कि महाराज ने आपको किले में सन्तरी का काम दिया है। महाराज ने महन्त बाबा जीवनदास और कुमार कूरसिंह शाहदेव के साथ गुप्त रीति से क़िले में भोजन किया। उस

समय कुमार सुन्दर सन्तरी का कार्य करता था। भोजन के साथ-साथ वार्तालाप भी होता जाता था। अन्त में क्रूर पहले की अपेक्षा बहुत प्रसन्न होकर विदा हुआ। कुमार-सुन्दर ने अब 'रङ्ग-महल' में पहरा दिया। वहाँ राजकुमारी ज्योत्स्ना तथा कृष्णपुरी की आशाबाला और हेमांगिनी से साक्षात्कार हुआ। ये महिलायें चुपके से कुमुदनी से लाई गई थीं—जहाँ वे क्रमशः जीवकली तथा पार्वती के नाम से वेष बदलकर रहती थीं। इसी बीच में गौरगढ़ के बाबू साहब भी रङ्ग-महल में आ पहुँचे। आशाबाला का सौन्दर्य देख, उनकी गति दुष्यन्त-सी हो गई। उन्होंने आशाबाला का अनायास सम्मान करना आरम्भ किया। लेकिन यह बात राजकुमारी ज्योत्स्ना को तनिक भी अच्छी न लगी।

अब स्वयं महाराज भी वहाँ आगये। उन्होंने सबों को वहाँ से अलग-अलग कर दिया। अल्लू ठाकुर की बुलाहट हुई। शादी-व्याह की बातें करनी थीं। अतः नाई-ब्राह्मण की जरूरत पड़ी। नापित होने के अतिरिक्त महाराज का यह गुप्त सलाहकार भी था। इसलिये उन्होंने इससे पूछा, कि आशाबाला के विवाह का क्या प्रबन्ध किया जाय; जो सर्व-सम्मति से मान्य एवं उत्तम हो। अल्लू ने कितने वर-बार बताये, पर महाराज को उनमें एक भी पसन्द न आया।

अल्लू—"प्रभो ! जितना पता था, आपको बता चुका। आशाबाल के वर में कई गुणों का होना आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति हो, जो श्रीमान् का मित्र हो, मानगढ़ का शत्रु हो। इतना चालाक हो, कि गढ़वा तथा जपला आदि शहरों के लोगों को मिलाये रक्खे, और कम-से-कम इतना बल रखता हो कि मानसिंह का सामना सफलता-पूर्वक कर सके। उसका कुलीन होना भी आवश्यक है। साथ ही उस में सदाचार की मात्रा भी प्रचुर रूप से होनी चाहिये।"

महाराज—"नहीं, अल्लू ! आचरण पर मुझे इतना ध्यान देना आवश्यक नहीं जान पड़ता, क्योंकि लक्ष्मी सभी अवगुणों को ढक लेती है। अगर आशाबाला का विवाह बलरामसिंह से करा दिया जाय, तो कैसा रहेगा ?"

अल्लू—"यदि बलराम आशाबाला का पाणिग्रहण करे, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर वह अपनी बदमाशी के लिये प्रसिद्ध है। वह सीमा-प्रान्तों में लूट मचाता रहता है। वह न हत्या करने से चूकता है, न नृशंसता से। सारे पण्डितों ने उसका बहिष्कार कर रक्खा है। यदि वही आपको पसन्द हो, तो मुझे इसमें क्या कहना है ?"

महाराज—"अल्लू ! यह कोई बड़ी बात नहीं है। मैं उसकी ओर से चेष्टा करूँगा और आशा है कि महन्त जी की कृपा से उसे फिर जाति में मिला लिया जायगा।

धार्मिक व्यक्तियों का चित्त अति कोमल होता है। क्या उन्हें उसकी अवस्था पर दया नहीं आयगी!"

अल्लू—"महाराज महन्त जी की कृपा होगी तो उसका पवित्र हो जाना कोई कठिन बात नहीं। किन्तु, सूक्ष्म नागपुर की सभा द्वारा वह रक्षा कानून से बाहर घोषित किया गया है। उसके लिये क्या किया जायगा ?"

महाराज—"हम लोग प्रयत्न करेंगे यह सभा अपनी आज्ञा उठा ले। क्या हम लोगों की दलीलों के सामने सभा न झुकेगी ?"

अल्लू—"मान लिया कि उसका वंश निष्कलङ्क है, पर उसका चाल-चलन और मुखाकृति तो ऐसी है मानों कहीं का कसाई हो। मैं तो समझता हूँ कि आशाबाला उसे कभी पसन्द न करेगी।"

महाराज—"अजी, वह किसी न किसी प्रकार आशाबाला को समझा बुझाकर राजी कर ही लेगा।"

अल्लू—"महाराज, मैंने नाहक इतने संदेहात्मक प्रश्न किये। पर वह आशाबाला से मिलेगा कैसे ? वह भीम-चूल्हा के जंगलों से कभी बाहर तक नहीं निकलता।"

महाराज—"उसके लिए प्रबंध किया जायगा। लेकिन पहले दोनों महिलाओं को यह मालूम हो जाना चाहिए कि हम लोग उन्हें यहाँ रक्खेंगे तो जयनगर और मानगढ़ के बीच में युद्ध हुए बिना न रहेगा। साथ ही हम लोग उन्हें

मानसिंह के हवाले करना भी नहीं चाहते। अतः हमारे राज्य से चुपचाप निकल जाने ही में उनकी कुशल है।"

अल्लू—"वे कहेंगी कि हम लोगों को सरगुजा पहुँचा दिया जाय। मैं भी समझता हूं कि यही अच्छा होगा क्योंकि वहाँ जाने से उनका विवाह राज-कुल में हो सकता है। सरगुजा अपना लाभ सोचकर दल-बल सहित पलामूँ के पश्चिमी तथा उत्तरी भागों पर अपना अधिकार अवश्य कर लेगा। इस कार्य में उसे प्रतापपुर, यशपुर, लखनपुर, कंकर, वस्तर तथा रीवाँ आदि राज्यों से भी सहायता मिलेगी। हम लोगों से बिना युद्ध किये ही मानगढ़ का मान मर्दन हो जायगा। जरा इस दास नाई की चतुराई से भी तो लाभ उठाइये।

महाराज—"नहीं-नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। समझ कर बातें करो। इस तरह मानगढ़ से विरोध करने से काम न चलेगा। उन्हें यहाँ रखने में जितनी हानि है, सरगुजा जाने देने में उससे कम नहीं है। उससे अच्छा तो यही है कि उन्हें किसी मठ में रख छोड़ा जाय। यहाँ से आशाबाला और हेमांगिनी दोनों ही गुप्त वेष में चली जायँ। उन्हें लंबोदर नगर के महन्त बाबा ठंठपाल दास के यहाँ पहुँचा कर हमारे सैनिक लौट आवेंगे। ठंठपाल भी आशाबाला को कुछ काल तक रख लेंगे। जब तक वह मठाधीन अनाथालय वास करेगी तब तक महन्त जी की अनुमति के बिना

किसी को उस पर वैवाहिक अधिकार न रहेगा। यह मठों के नियम हैं।"

अल्लू—"अगर महाराज का अभिप्राय ठंटपाल को विदित हो जाय तो संभव है आशाबाला मठ के बाहर जाने ही न पायेगी। फलतः बलराम को, उसे समझाने बूझाने का अवसर ही न मिलेगा।"

महाराज—"हाँ ठीक है। किन्तु बलराम को सदा से हमारे यहाँ से आर्थिक सहायता गुप्त रीति से मिलती आई है। अतः जितने लोग कानून भंग करने वाले ठहराये गये हैं, उन सबों का उसने एक शक्तिशाली दल-बाँधा है। उस दल की सहायता से वह अपने जंगलों में निर्द्वन्द्व-रूप से रहता है। वह मानगढ़ तथा लम्बोदर नगर को कभी शान्ति के साथ नहीं बैठने देता। वह राजाओं से किसी प्रकार कम नहीं है। हाँ, उसके पास इतना राज्य नहीं है। विवाह तो हो-ही जायगा।"

अल्लू—"ऐसे तो महाराज की इच्छा, पर मुझे तो उस जङ्गली के साथ आशाबाला का विवाह करना ठीक नहीं जँचता।"

महाराज—"अब बातें बनाने से काम नहीं चलेगा। काम करना होगा। मैं अब कृष्णपुरी की महिलाओं के भागने का उपाय करता हूँ। एक विश्वस्त व्यक्ति उन्हें मार्ग दिखाने जायगा। यदि आशाबाला आदि को यह बात

अस्वीकार हो तो उन्हें साफ़-साफ़ बता दिया जायगा कि हमें लाचार होकर उन्हें मानगढ़ पहुँचाना पड़ेगा। आप जिस तरह हो, बलराम को सूचित कर देना कि वे यहाँ से चलें। वह अपनी सुविधा के अनुसार स्वयं एक स्थान तथा समय खोज निकालेगा। मेरे पास ऐसा आदमी है, जो उनके साथ भेजा जा सकता है।"

ठंठपाल, जिसके यहाँ राजकुमारियों को भेजा जा रहा था, लम्बोदर-मठ का महन्त था। वह सूक्ष्मनागपुर के अन्तर्गत सभी मठों का अधिपति था। लम्बोदरनगर-मठ को एक बड़ी जागीर भी मिली हुई थी। सम्पन्न होने के अतिरिक्त ठंठपाल जयसिंह तथा मानसिंह का नातेदार भी होता था।

अल्लू ने पूछा—"वह कौनसा आदमी है, जो यह महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिये चुना गया है?"

महाराज—"एक परदेशी है, उसका यहाँ कोई अपना नहीं है। मेरी कार्य-सिद्धि में उसके द्वारा कुछ भी बाधा नहीं पहुँच सकती। वह पलामूँ में बिलकुल नया है। यहाँ कितने राजनैतिक दल हैं—उसे अभी यह तक ज्ञात नहीं है। उसे केवल उतना ही मालूम होगा—जितना कहा जायगा। जिस आदमी ने तुम्हें अभी-अभी यहाँ भेजा है, उसी को यह काम सौंपा जायगा। उसे कुछ न मालूम हो सकेगा, कि हमारा उद्देश्य क्या है।"

अल्लू ने कुछ देर तक चुप रहकर ऐसा भाव जताया, मानो उसे महाराज का यह कार्य बिल्कुल न रुचा हो। अन्त में वह बोला—"महाराज! आपने तो अपने सिद्धान्त के ठीक विरुद्ध कार्य किया है। इतनी जल्दी तो आप किसी नये आदमी पर विश्वास नहीं करते थे।"

महाराज—"इसका एक कारण है, तुम जानते हो कि मुझे महावीर जी की शक्ति में कितना विश्वास है। परसों रात की बात है, मैं शयन करने के पूर्व उनकी प्रार्थना कर रहा था, वह मार्ग में यात्रियों की रक्षा करते हैं। अतः मैंने निवेदन किया कि महाराज! ऐसे लोगों को मेरे राज्य में भेजो, जिनके द्वारा हम लोगों के मनोरथ सिद्ध हो सकें।"

अल्लू—"क्या श्रीमान् की प्रार्थना के बदले उस बजरङ्ग महाप्रभु ने इसी भोंटैल को भेजा है?"

महाराज—"बस, खामोश रह! तभी तो लोग तेरी निन्दा किया करते हैं। शैतान कहीं का! तू ऐसा दुष्ट है, कि महाराज क्या, महावीर जी की भी दिल्लगी उड़ाने लगा। अच्छा, अब सुन—ज्यों-ही मेरी आँखें लगीं, कि परम् कृपालु महावीर ने मुझे दर्शन दिया। वह एक युवक को भी साथ में लाये थे। वह बोले, कि यह आदमी नक्षत्र का बली है। तलवारकी तीक्ष्ण धारसे बच जायगा। न फाँसी पर चढ़ेगा। न नदी में डूब कर मरेगा। जिस पक्ष का समर्थन करेगा, उसकी जय होगी। जिस किसी काम में लग जायगा उसी

में सफलता प्राप्त होगी। दूसरे दिन प्रातः काल मैं किले से बाहर निकला, महिला नदी के तट पर इसे पाया। रात की बातों से मिलान करने पर आभास हुआ कि वह यही युवक था।"

अल्लू—"मैं बिना आज्ञा के बोलने का प्रयास कर रहा हूँ। जिस युवक को महावीरजी साथ लाये थे, उसकी मुखाकृति से इसकी शक्ल-सूरत ठीक-ठीक मिलती-जुलती है?"

महाराज—"हाँ, बिल्कुल एक जैसी सूरत! मैंने इस युवक की जन्म-कुण्डली के आधार पर टिप्पणी भी बनवाया है। पण्डित हृषीकेशजी की सहायता से मुझे पता लगा है, कि इस मित्र-हीन युवक की भाग्यराशि ठीक मेरे ही समान है।"

"कार्य अति कठिन है। आशा है, नवयुवक उसकी पूर्ति में त्रुटि न करेगा।' अल्लू केवल इतना कह कर चुप होगया।

महाराज—"खबरदार! यह गुप्त रहस्य उसे मालूम न होने पाये। उसे केवल इतना ही बताना काफी होगा कि मैं कृष्णापुरी की देवियों को लम्बोदर नगर के स्वामी ठठपालजी महाराज के यहाँ भेज रहा हूँ। बलराम राह में हस्तक्षेप करेगा, किन्तु इसका ज्ञान उसे तो क्या, उन महिलाओं कोभी न होना चाहिये। किसी को यह खबर मालूम न होने पाये। केवल पथ-प्रदर्शक इन बातों को पूरा ज्ञान रखेगा। देखो त्रिलचोन या तुम इस कार्य के योग्य किसी आदमी को ठीक कर रक्खो।"

## [ ८ ]

युवक कुमार को उच्चाधिकारी सरदार कपूरसिंह के दफ्तर में बुलाया गया। वहाँ महाराज भी उपस्थित थे। यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसे सबसे पहले उस कार्य के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कुछ कहा गया, जो उसके सुपुर्द शीघ्र ही किया जाने वाला था। उसे बताया गया कि अन्य चार व्यक्तियों के साथ उसका भी एक महत्व-पूर्ण कार्य के लिये चुनाव हुआ है। उन चार में से एक राह दिखायेगा।

कुमार का काम कृष्णपुरी की युवतियों को लम्बोदरमठ के स्वामी बाबा टंटपालदास के यहाँ पहुँचा देना होगा। वहाँ उनके कई सम्बन्धी रहते हैं। इस लिये बाबा की सहायता से वे अपने सम्बन्धियों के यहाँ पहुँच जायँगी। यह सारा कार्य गुप्त रीति से सम्पादित होना चाहिये। यह सुन कर कुमार सुन्दर के आनन्द की सीमा न रही। उसे एक आदेश-पत्र दिया गया जिसमें उसकी सहायता के लिये राह का वर्णन था।

उसमें उन स्थानों का उल्लेख किया गया था जहाँ यात्राकाल में उसको ठहरना नितान्त आवश्यक था। ये स्थान साधारणतः अप्रसिद्ध ग्राम, परित्यक्त मन्दिर तथा ऐसे-ऐसे पड़ाव थे जो शहरों से दूर अवस्थित थे। उसमें यह भी चेतावनी थी कि जब वे मानगढ़ की सीमा में पहुँचें तो विशेष रीति से सावधान रहें।

कुमार सुन्दर को यह भी बताया गया कि तुम यात्रा-भर अपने को अवध के एक प्रतिष्ठित परिवार का प्रधान सेवक बताना अगर कोई पूछे तो कह देना कि मेरी मालकिन जी श्री वंशीधर जी के दर्शन करने गई थीं। अब वहाँ से लौटी आती हैं और बक्सर की यात्रा कर रही हैं। वहाँ वह श्री विश्वामित्र जी के आश्रम के दर्शन करेंगी। इन स्थानों के दर्शन करके वे रामरेखा घाट पर पुण्य सलिला भागीरथी में स्नान करेंगी वहाँ से श्री काशी-क्षेत्र होती हुई वे अवध को लौटेंगी।

उस पञ्जाबी युवक के भविष्यत् का भी निरूपण कर लेना महाराज जयसिंह की समझ में अत्यावश्यक था। इस हेतु वह आगे-आगे चले, और सुन्दर पीछे-पीछे। दोनों ही जयमहल की एक अट्टालिका पर आ पहुँचे। वहाँ हृषीकेशजी महाराज उपस्थित थे। आराम से सुकोमल शय्या पर पड़े-पड़े वह स्वर्गीय सुख का अनुभव कर रहे थे। वह फलित-ज्योतिष, काव्य-कला तथा दर्शन-शास्त्र के

प्रकाण्ड पण्डित थे। बहुत सी पुस्तकें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं।

कुमार ने राज-प्रासाद में अनेक सजे हुये कमरे देखे थे किन्तु हृषीकेश के कमरे ने सबों को मात कर दिया था। इसका विभव राजकीय शयनागार से किसी प्रकार कम न था। हृषीकेश जी विलास प्रियता की मूर्ति जान पड़ते थे। उनका पुस्तकालय कारीगरी की चरम-सीमा पर पहुँच गया था। नक्काशी के कारण प्रत्येक काष्ठ निर्मित पदार्थ अति सुन्दर रूप धारण कर रहा था। काठ की चीज़ों के अतिरिक्त दस्तकारी के सर्वोच्च नमूने भी भरे पड़े थे। अजायब घर-सा हो रहा था। अध्ययनशाला से शयनागार में जाने को एक राह थी। वहीं से एक दूसरा मार्ग मीनार के शिखर पर जाता था जो हृषीकेश जी का मान-मन्दिर था।

जैसा विचित्र उनका वास-स्थान था वैसा ही विचित्र उनका पुस्तकालय भी। महामहोपाध्याय जी स्वयं विशाल मसनद पर बैठे कुतूहल के साथ एक पुस्तक का अवलोकन कर रहे थे।

महाराज जयसिंह ने प्रणाम करके कुछ देर बाद मतलब की बात छेड़ी। बोले—"कृपा करके बताइये कि मैंने जो जन्म-पत्री आपकी सेवा में भेजी थी, और जिस पर आपने कुछ सम्मति भी प्रकट की थी, पूर्णरीति से देखी

गई या नहीं ? मैं उस व्यक्ति को भी यहाँ लाया हूँ। यदि आप चाहें, तो उसकी हस्त-रेखायें भी देख सकते हैं। काम बहुत जरूरी है।"

अब हृषीकेशजी उठे, और नवयुवक की ओर बढ़े। निकट पहुँचकर बड़े गौर से कुमार-सुन्दर की मुखाकृति की रेखायें देखने लगे। उन्होंने एक-एक रेखा की जाँच की और मन-ही-मन उन पर विचार किया। कुमार ने सिर नीचा कर लिया। इसके बाद वह गम्भीर स्वर में बोले—"हाथ आगे बढ़ाओ।"

कुमार ने वैसा ही किया।

हाथ देख लेने के बाद हृषीकेशजी महाराज जयसिंह को अलग ले गए और उनसे बोले—"महाराज, इसका चेहरा-मोहरा तथा इसकी हस्त-रेखाएँ बिल्कुल वे ही बातें बताती हैं, जिनकी चर्चा जन्म-पत्री देखकर मैंने पहले ही की थी। आप भी तो इस विद्या में निपुण हैं, आपके पूर्वकृत निश्चय मेरे विचारों से सर्वथा मिलते-जुलते हैं। विदित होता है कि युवक वीर एवं भाग्यशाली होगा।"

महाराज—"स्वामीभक्त होगा या नहीं ? बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि बल और ऐश्वर्य होने पर लोग विश्वासघातक हो जाते हैं।"

ज्योतिषीजी ने उत्तर दिया—"यह विश्वासघात न करेगा। इसकी आयु-रेखा गहरी तथा साफ है। इससे

विदित होता है कि जो इसका शुभचिन्तक होगा, तथा इस पर विश्वास करेगा, उसके पक्ष का समर्थन यह प्राणपन से करेगा। ऐसे आदमी से विश्वासघात की आशंका कभी नहीं की जा सकती। परन्तु तो भी.........।"

"परन्तु क्या?" राजा ने घबड़ाकर पूछा—"पण्डितजी, आप क्यों संकुचित होते हैं? जो हो, साफ़-साफ़ कह दीजिये।"

हृषीकेश—"अच्छा, साफ़-साफ़ सुनो—जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसे नियुक्त करना चाहते हो, अगर उसमें तनिक भी कुछ ऐसी बात हो, जिससे इसको सन्देह होना सम्भव है तो कृपया आप अभी कुछ वर्षों तक इसे ऐसे कार्य में न लगाएँ। ऐसा करने से धीरे-धीरे अन्य कर्म-चारियों की नाईं यह भी कार्यपटु तथा निःशङ्क हो जायगा।"

महाराज—"क्या यही कहना था? इतना कहने में विलम्ब की क्या आवश्यकता थी? क्या आपने सोचा था कि ऐसी बातें कहने से मैं कुपित हो जाऊँगा? कार्य बड़े मार्के का है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु आपको विदित होगा कि राजनीति सदा ही धर्म एवं सदाचार की बाट नहीं जोहती। धर्म एवं सदाचार व्यक्तिगत जीवन के सार-पदार्थ अवश्य हैं। आप निश्चिन्त रहें कि जिस उद्देश-पूर्ति को लक्ष्य करते हुए, आपने आदेश किया है, उसकी पूरी जिम्मेवारी केवल इसी पर न रहेगी। यह कार्य-

सम्पादन के अन्तर्हित अभिप्राय से अवगत भी न हो सकेगा।"

हृषीकेश—"महाराज, इस विषय में आपको अति सावधानी से काम लेना होगा।"

महाराज—"कृपया यह बताइये, कि आज आधी रात को यात्रा करना श्रेयष्कर होगा, वा नहीं? आप देख रहे हैं, कि उपर्युक्त काल में चन्द्रमा का क्या स्थान है? उससे शनि का सम्बन्ध भी मालूम होता है। अब रही बृहस्पति की बात, उस समय उसकी प्रबलता है। अतः मेरी समझ में लाभ-ही-लाभ दीख पड़ता है। आप पण्डित हैं, आपका निर्णय मान्य होगा।"

ज्योतिषी जी ने उत्तर दिया भेजने वाले की तो पाँचो अंगुलियाँ घी में रहेंगी—ऐसा जान पड़ता है। परन्तु शनी का रवि के साथ ऐसा सन्निकर्ष है कि वह लुप्त-प्राय हो गया है। अतः मैं अनुमान करता हूँ कि परिणाम अच्छा न निकलेगा जो दल भेजा जायगा उससे भय तथा विपत्ति की आशंका की जाती है। यह कार्य दुःखदायक एवं मृत्यु-दायक भी प्रतीत होता है। परन्तु यह सब जाने वालों के लिये है। जब ग्रहों का स्थान प्रतिकूल रहता है तो क्षति एवं कारागार की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं।

महाराज—"उनके साथ अत्याचार तो होंगे और उन्हें कारागार की सैर भी करनी पड़ेगी। किन्तु भेजने वाले का

बाल भी बाँका न होगा। उसका तो लाभ ही लाभ है। क्या आपकी विद्या ऐसा नहीं बताती ?"

ज्योतिषी—"हाँ हाँ ! ज़रूर !"

महाराज चुप हो गए। वह आगे कुछ भी न बोले जिससे अनुमान किया जा सके कि वह भविष्यवाणी उनके उद्देश्य के अनुकूल थी। कारण यह था कि वह अपने उद्देश्य को गुप्त रखना चाहते थे।

पाठकों को विदित ही है कि वह कृष्णपुरी की अधिकारिणी आशाबाला को धोखे से बलराम के जाल में फँसा देना चाहते थे। बलराम का जन्म अवश्य एक उच्च कुल में हुआ था पर हत्यारे और पापी आचरण के कारण वह क़ानून भङ्ग करने वाला घोषित कर दिया गया था। वह अपने उग्र स्वभाव और असीम साहस के लिए प्रसिद्ध हो चुका था।

अन्त में महाराज जयसिंह, कुमार-सुन्दर की ओर लौटे और बोले—"सुन्दर ! मेरे पीछे-पीछे चले आओ। देव तथा राजा दोनों ने तुझे गौरव पूर्ण कार्य के लिये चुना है। तुझे तैयार रहना पड़ेगा। अन्य सब तैयारियाँ हो जायँगी। ज्यों ही समलाई के मन्दिर में बाहर के घण्टे बजने लगें तुझे रकाब में पैर रखना होगा।

[ ६ ]

कुमार-सुन्दर को सारी आवश्यक सूचनाएं मिल चुकी थीं। अतः बारह बजने में कुछ ही मिनट बाकी थे कि वह द्वितीय आँगन में जा धमका और दया मन्दिर की छाया में खड़ा होगया। उस मन्दिर में आशाबाला ठहराई गई थी। घोड़े भी कसे हुये तैयार थे दो खच्चर पहले से ही लदे खड़े थे। कृष्णपुरी की महिलाओं के लिए दो उपयुक्त घोड़े थे। उनके साथ एक विश्वस्त दासी भी जाने वाली थी। अतः उसके लिए भी एक घोड़ा लाया गया था। कुमार की दृष्टि एक ऐसे अश्व पर पड़ी जो लोह-निर्मित जीन से सजा था। उसका शरीर अति सुदृढ़ एवं सुन्दर लोहे के चारजामें से प्रायः ढका हुआ था। यह घोड़ा कुमार-सुन्दर के लिए था। आपस में किसी को किसी से बात चीत न हुई। तीनों अश्वारोही ऐसे चुप थे मानो निर्जीव हों। कुमार को यह देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित थे उनके हाथों में बड़ी-बड़ी

बर्छियाँ थीं। उन में से एक ने कुमार के कान में कहा कि राह दिखाने वाला जयनगर के बाहर प्रतीक्षा कर रहा है।

दया मन्दिर की अट्टालिका का द्वार खुला। अट्टालिका से उस प्रांगण में उतरने का यही एक टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग था। तीन स्त्रियाँ उस द्वार से निकलीं और रथ पर जा बैठीं। एक पुरुष आगे-आगे राह दिखाता हुआ चला। धीरे-धीरे सारा दल उस भयानक दुर्ग से बाहर निकल आया।

पन्द्रह मिनट तक चलकर जयनगर का उपवन पार किया। श्रीरामपुर सामने दिखाई देने लगा।

कुमार सुन्दर पलामूँ की प्राकृतिक शोभा देखता हुआ आगे बढ़ने लगा। धीरे २ हेमांगिनी से बात-चीत भी होने लगी।

वह बोली—"आप किन-किन शुभ अक्षरों को विभूषित करते हैं? वह कौनसा पद है जिसे आपने पवित्र किया है।

कुमार ने दोनों प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया। हेमांगिनी ने पुनः प्रश्न किया—"राह से आप भली भाँति परिचित हैं या नहीं?"

कुमार ने उत्तर दिया—"मैं मार्ग से बिल्कुल अपरिचित हूं, किन्तु मुझे उसका पूरा विवरण प्राप्त है। जहाँ हमलोग सर्व प्रथम ठहरेंगे वहाँ एक मार्ग-दर्शक मिलेगा।

महिला—मार्ग से अनभिज्ञ होते हुए भी आप ही इस कार्य के लिये क्यों नियुक्त किए गए?"

युवक—महाराज की जैसी आज्ञा। उनके विचारों की आलोचना करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है।

महिला—"आपका जन्म किसी कुलीन घर में हुआ जान पड़ता है?"

कुमार—"हाँ, देवी! इस में तनिक भी संदेह नहीं है।"

अब दूसरी छोटी महिला से भी न रहा गया। उसने पूछा—"आप वही सज्जन मालूम होते हैं, जिन्हें एक दिन सराय में मैं ने महाराज के साथ भोजन करते देखा था?"

कुमार ने विस्मित होकर कहा—"जी हाँ।"

आशाबाला—"दीदी! मेरा विश्वास है कि जब तक हम इस युवक के संरक्षण में रहेंगी, तब तक किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आ सकती।

सुन्दर—"देवी! मैं परमात्मा को साक्षी देकर तथा अपने पूर्वजों की सौगन्द खाकर-कहता हूं कि यदि मुझे पञ्जाब और पलामूँ दोनों का तिलक एक ही-साथ मिले तो भी मैं यावज्जीवन आप लोगों के प्रति कपट, विश्वास-घात अथवा निर्दयता का व्यवहार नहीं करूँगा।

कुमार ने मार्ग दर्शक से पूछा—"प्रथम पड़ाव का स्थान कितनी दूर और होगा?"

पथ प्रदर्शक ने कहा—"घबराने की आवश्यकता नहीं। आधे घण्टे का मार्ग और है।

कुमार—"वहाँ पहुंचने पर तुम हम लोगों को किसी दूसरे के हाथ छोड़ दोगे ?"

मार्ग दर्शक—"हाँ श्रीमान् ।"

इसी बीच में महिलाएँ चिल्ला उठीं—"पीछे देखो ! पीछे देखो ! हम लोगों के पीछे शत्रु पड़े हैं ।

कुमार ने शीघ्रता से पीछे मुड़कर देखा । सचमुच दो शस्त्रधारी घुड़ सवार इतनी तेजी से आ रहे थे कि उनके पहुंचने में अधिक देर न लगेगी ।

सुन्दर—आप आगे बढ़ें । मैं उन्हें रोकता हूँ । आप उनकी पहुंच के बाहर निकल जायँ ।

श्रीमती आशाबाला कुमार से बोली—"ऐ वीर धनु-धर ! हम लोगों को आप पर पूर्ण विश्वास है ।

युवक ने कहा—हम लोगों का पीछा करने वाले केवल दो हैं । यदि उनकी इच्छा अनिष्ट करने की हुई तो आज मैं उन्हें भली भांति दिखा दूँगा कि पंजाबी युवक महिला-ओं की रक्षा किस वीरता से करता है ।"

दोनों अश्वारोही निकट आ पहुंचे । एक सवार को साथ लेकर कुमार भी उनका सामना करने को तय्यार हो गया । दोनों अश्वरोहियों का शरीर सिरसे पैर तक सुदृढ़ लोहेकी पोशाक से ढका हुआ था । कुमार उन्हें पहचान न सका ।

निकट पहुंच कर उनमें से एक ने कहा—"हट जाओ । क्यों बेकार तकलीफ़ उठा रहे हो, तुम्हारा बोझा हम हलका

किये देते हैं। यह काम तुम्हारी अवस्था और पद से कहीं बढ़ कर है।"

कुमार—"महानुभावो! पहली बात तो यह है कि मैं अपने महाराज की आज्ञा का पालन कर रहा हूं। दूसरी बात यह है कि ये महिलाएँ मेरे संरक्षण में ही रहना चाहती हैं। अतः मैं कितना ही अयोग्य क्यों न होऊँ, कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं होना चाहता।

तब एक अश्वारोही ने गर्ज कर कहा—"दूर हो! एक टुकड़खोर का इतना साहस?

कुमार—"साहस? क्या इसमें भी कुछ सन्देह है, तुम वीर बनते हो और अबलाओं पर अकारण अत्याचार करने पर उतारू हुए हो। सम्भव है तुम्हारे और मेरे पद में कुछ अन्तर हो, पर अब वह अन्तर भी नहीं रहा, क्योंकि अपने उच्च पद का गौरव मनुष्य अपने आप रखता है। अच्छा, अपनी तलवारें निकालो।

अश्वारोही घोड़े कुदाते हुए कोई डेढ़ सौ गज पीछे हटे और वहाँ से घोड़े सरपट दौड़ा दिये। वे प्रायः उस स्थान को पहुंच चुके थे जहां से आक्रमण किया चाहते थे। इतने ही में कुमार ने महिलाओं की ओर दृष्टि फेरी और नम्रता पूर्वक घोड़े की जीन पर नत-मस्तक हुए। महिलाओं ने भी कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखते हुए रूमाल हिला कर उन्हें उत्तेजित किया।

अब चारों अश्वारोही बीच के भूभाग पर जा मिले। दोनों दलों में बर्छियाँ चलने लगीं। कुमार का सहयोगी खेत रहा। वह अपने शत्रु से कम वीर न था किन्तु उसका मुख सुरक्षित न था। शत्रु को अच्छा मौका मिला, उसने उसकी आँख में ऐसी बर्छी मारी कि नोक मस्तिष्क तक पहुँच गई। वह तत्क्षण वीरगति को प्राप्त हुआ। कुमार की भी ऐसी ही अवस्था होती क्योंकि उसका चेहरा भी सुरक्षित न था। परन्तु इस युवक में भी फुर्ती बहुत थी। विपक्षी ने वार किया ही था कि वह जीन पर इस प्रकार झुक गया कि बर्छी उसके गाल को छूती हुई दाहिने कन्धे पर से निकल गई। उसने तत्काल अपनी बर्छी से शत्रु की छाती पर इतनी प्रबलता से आघात किया कि वह पृथ्वी पर जा गिरा। कुमार उसका लौहस्क्रम सिर से उतारने के लिये घोड़े से कूद पड़ा। अब तक दूसरा अश्वारोही निश्चेष्ट था। अपने साथी की अवस्था देख कर वह भी शीघ्रता के साथ उछला, उसका मित्र बेहोश पड़ा था। उसकी छाती के दोनों ओर पैर फांद कर वह उस पर खड़ा हो गया और बोला—जाओ, अपनी जान लेकर भाग जाओ और अपने साथ की उन स्त्रियों को भी लेते जाओ।

कुमार शत्रु के इन तिरस्कार पूर्ण शब्दों को सह न सका। उसने उत्तर दिया–मैं तुम्हारी सलाह मानने को

तय्यार नहीं हूं। मुझे यह बताओ कि मेरे साथी के प्राण लेने वाला कौन है। शत्रु ने उत्तर दिया-"मैं फिर कहता हूँ कि शांतिपूर्वक पीछे हट जाओ। हमने तुम्हारी राह रोक कर उसका फल पा लिया तुम्हारे तथा तुम्हारे सारे दल का खून भी इस का बदला नहीं चुका सकता।"

इस पर कुमार तलवार खींचकर उस की ओर लपका। आक्रमण कारी ने झपट कर कुमार के सिर पर एक गहरी चोट की। कुमार सुन्दर के सिर पर लोहे की बड़ी टोपी थी। उसके भीतर पगड़ी बंधी थी। किन्तु तलवार ने लोहे को काट दिया और पगड़ी भी कट गई यहाँ तक कि उसकी धार सिर के बालों तक जा पहुंची किन्तु और कोई अनिष्ट न हुआ। क्षणभर सुन्दर किंकर्तव्य विमूढ़ होकर एक घुटना टेके हुए मानों उस वीर की दया का पात्र बना रहा। यदि शत्रु चाहता तो दूसरा वार करके उस नवयुवक के जीवन की इतिश्री कर देता। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। संभवतः उसे धर्म युद्ध प्रिय था। इतने में कुमार भी संभल गया और सहसा उठ कर उस पर टूट पड़ा।

यह द्वंद्व युद्ध था। दोनों वीर अपनी सारी शक्ति का परिचय दे रहे थे। अचानक घुड़सवारों का एक बड़ा दल आ पहुँचा। शब्द हुआ—"महाराज की ओर से आज्ञा होती है कि युद्ध बन्द करो। अतिशीघ्र बन्द करो।" दोनों वीर

दों तरफ़ हट गए। कुमार ने साश्चर्य देखा कि उस दल के साथ श्रीमान् कपूर सिंह जी भी थे। युद्ध बन्द कराना उनका ही कार्य था। त्रिलोचन भी अपने दो तीन अनुयायियों के साथ था सब प्रायः बीस अश्वारोही थे।

श्रीमान् कर्पूर सिंह के आगमन से एक बड़ा भारी अनिष्ट दूर हुआ। युद्ध का अन्त हो गाया। कुमार के प्रतिद्वन्द्वी ने सिर से लोहे की टोपी उतार कर फेंक दी और अपनी तलवार श्रीमान् कर्पूरसिंह को समर्पित करते हुए कहा "कर्पूर सिंह। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हूं। परन्तु परमात्मा के वास्ते गौरगढ़ की रक्षा करो।"

कर्पूर सिंह को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा क्यों ऐसी बातें करते हो। "बाबू साहब" यहाँ कैसे आ पहुंचे जब महाराज यह बात सुनेंगे तो नवयुवक का सारा भविष्य अंधकारमय हो जायगा।

यह व्यक्ति दौलत राय था। उसने उत्तर दिया—यह समय कारण पूछने का नहीं है अभी इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि यह गौरगढ़ के "बाबू साहब" हैं। कोई अन्य-व्यक्ति नहीं हैं सारा दोष मेरा है।

कर्पूर सिंह दौलतराय तथा "बाबू साहब" को लेकर चले गए। धनुर्धर अश्वारोहियोंने कुमार को एक सुदृढ़ सिर का पहनावा दिया। कटी हुई टोपी अलग करदी गई। कृष्णपुरी की महिलाओं ने व्रण पर पट्टी लगा दी।

हेमांगिनी ने उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर पुरस्कार स्वरूप एक रंगीन रूमाल दिया। उस समय की प्रथा के अनुसार कुमार सुन्दर ने इसे अपनी बांह पर बाँध लिया। प्रथम मार्ग-दर्शक भी चला गया। महाराज के आदेशानुसार एक दूसरा व्यक्ति राह दिखाने के लिए आगया। वह मुसलमान पिंडारी था। उसका नाम हयातउद्दीन था। उसने आते ही चलने की आज्ञा दी। किंतु लोगों के विश्वास के लिये उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया कि उसके विषय में संदेह रखने का कोई कारण न रहा।

[ १० ]

कुमार सुन्दर ने पिंडारी से पूछा क्या तुम रुपए-पैसे लेकर पथ प्रदर्शक का कार्य करते हो? तुम्हारा विश्वास कैसे किया जा सकता है?

हयातउद्दीन बोला—हुजूर मैं तो पहले ही से आपका चिर ऋणी कृतज्ञ गुलाम हूँ

कुमार ने आश्चर्य से पूछा—"वह कैसे?"

वह बोला—"आपने महिला नदी के किनारे एक दरख्त से लटकते हुए शख्स की जान बचाई थी। वह मेरा भाई था जिस का नाम जियाउद्दीन था।"

कुमार—बड़े आश्चर्य की बात है कि जो लोग तुम्हारे भाई के प्राण लेने की चेष्टा करें तुम उनसे ही सरोकार रक्खो?

हयात दुःख के साथ बोला—हजूर! हम लोग करें क्या? जिस तरह गड़रिये के कुत्ते भेड़ों के साथ बर्ताव करते हैं उसी तरह ये लोग हमारे साथ पेश आते हैं। कुछ

रोज तक हम लोगों की निगरानी करते हैं। फिर इधर उधर रौंदे फिरते हैं। और इतने ही से उनकी ख्वाहिश पूरी नहीं होती अन्त में जान लेकर छोड़ते हैं।

पिंडारी राह दिखलाता जाता था। कुमार और उसके साथी पीछे-पीछे उसका अनुसरण करते थे। सात दिन बीत गए। एक कोस की दूरी पर पहुँचने के लिये वे दो कोस का चक्कर लगाते थे। वे प्रायः निर्जन मार्ग का अवलंबन करते थे। उनकी सदा यही चेष्टा रहती थी कि रात में कहीं बड़ा शहर या बड़ी बस्ती न मिले। दिन भर यात्रा करके वे किसी अप्रसिद्ध मठ में डेरा डालते थे। उन मठों में से बहुतों का यह नियम था कि कोई भी अभ्यागत आजाय तो बिना पूछ-ताँछ किए उसका अति सत्कार किया जाता था। आशाबाला तथा हेमाँगिनी के भेष-भूषा से कोई भी उनके व्यक्तित्व पर आशंका नहीं कर सकता था। जहाँ उनका दल जाता वहाँ पूरा सत्कार होता।

किन्तु ऐसे स्थानों में कुमार को केवल एक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। कठिनाई पथ-प्रदर्शक के कारण उपस्थित होती थी। वह विधर्मी तो था ही, आचरण का भी ठीक न था। शराब-ताड़ी, गाँजा, भाँग का वह अनन्य भक्त था। ऐसे मनुष्य के साथ कुमारादि को मठों में स्थान देने के समय पुजारियों को बड़ी आपत्ति होती

थी। साधारणतः इयात्ति चारदिवारी के भी भीतर प्रविष्ट होने नहीं पाता था। पर जहाँ कहीं मठ में स्थान मिल भी जाता तो मठाधीशों की अनिच्छा से।

अब यात्री भोजपुर प्रान्त में प्रविष्ट हुए। नासीरीगंज नामक शहर निकट था। किन्तु मार्ग-प्रदर्शक का आचरण असहय होने लगा। एक दिन एक विशेष घटना घटित हुई। जहाँ लोग ठहरे थे वह एक वैष्णव मठ था। बाबा भीष्मदास जी उसके महन्त थे। अतः वह 'भीष्मदास का मठ' कहलाता था यहाँ अशौच का नाम नहीं था। गृहत्यागी सन्यासी वास करते थे। बाबा भीष्मदास ने मठ के साधुओं का जीवन सुधार कर आदर्श बना रक्खा था। आप याज्जीवन पवित्रता एवं सदाचार की मूर्ति रहे। अब उनका स्वर्गवास हो चुका था। अतएव उनके अनुयायियों ने भी पवित्रता को मठ की प्रधान सम्पत्ति मान रखा था। यहाँ इस पिंडारी के कारण बड़ी कठिनाई हुई। अंततः उसे एक वाह्यगृह में स्थान मिला।

महिलाएँ मठ के एक उपयुक्त भाग में प्रविष्ट हुईं। महन्त जी ने कुमार सुन्दर को अपने छोटे से कमरे में बुलाया। वहाँ दोनों ने कुछ प्रसाद पाया। कुमार जैसे व्यक्ति की खोज में था उसे भाग्यवश वैसा ही मिल भी गया। उसे मालूम हुआ कि ये महन्त जी बहुत सी खबरें रखते हैं। अतः उसने उस अवसर को हाथ से नहीं जाने

दिया। दो दिनों से लंबोदर मठ के सम्बन्ध में अनेक भय-प्रद समाचार सुनाई पड़ते थे। उनके कारण कुमार को आभास होता था कि यात्रा अति कष्टकर है। राज्य में अशाँति फैल रही थी। स्थान २ पर चोर-डाकू बहुतायत से लोगों के जान-माल की घात में लगे रहते थे। जङ्गल उप-द्रवियों से भरे हुये थे। महन्त ठंठपाल की शक्ति का भी उसको पता लग ही चुका था। महन्त के यहां बदमाशों को दमन करने का कोई उचित प्रबन्ध न था। अतः कुमार रह-रह कर व्याकुल हो उठता था कि इतना क्लेश झेल कर इन महिलाओं को महन्त के हाथ में सोंपा भी जाय और वहाँ इनकी रक्षा न होसकी तो सारा प्रयत्न विफल हो जायगा। अतः वह महन्त जी से इसी सम्बन्ध में विशेष सूचना चाहता था पर उनके उत्तर संतोषजनक न थे।

दोनों व्यक्ति बातों में तल्लीन थे कि मठ का कोषाध्यक्ष क्रोध से रक्तमुख बनाये आ पहुँचा। वह बड़ी कठिनाई से आवेग को रोक कर बोला—"महन्त जी महाराज! आप ऐरे-गैरे सब को सहज ही में भर्ती कर लेते हैं। उसका फल भी सामने उपस्थित हुआ। यह विधर्मी पिंडारी बड़ा उपद्रवी है। भगवान का प्रसाद बनाकर रखा था कि वह चुपचाप पहुँच कर खाने लगा।

महात्मा जी ने यह बातें सावधानी से सुनीं और मठ के कर्मचारियों को आज्ञा दी कि दुष्ट की खूब खबर लो। उन

की आज्ञा का पालन किया गया और ज्यों ही कर्मचारियों के कोड़े चमके कि हयात वहाँ से भाग गया।

कुमार ने सोचा कि पीछे-पीछे चलकर देखा जाय कि वह कहाँ जाता है और क्या करता है। शायद उसके अभिप्राय का कुछ पता चल जाय। ऐसा सोच-विचार कर उसने महन्त से कहा कि बाबा उस दुष्ट का पता लगाना अत्यावश्यक है। अतः मैं जाता हूँ। देखूं किधर गया? हयात मठ से बाहर निकल चुका था। कुमार उसे देखता हुआ चला।

कुमार का सन्देह निर्मूल न था उसने कुछ दूर जाने पर जंगल में पिंडारी को कई लोगों के साथ देखा। वह झुरमुटों की ओट में बैठ गया। उसे मालूम हो गया कि दुष्ट ने जान-बूझ कर भगाए जाने का उपाय रचा था। अन्य लोग बलराम के अनुचर थे। वह उन्हें समझा रहा था कि मैं शोणभद्र के दक्षिण तट होकर सारा दल ले आऊँगा। आप लोग मँगरांव से कुछ दूर पर तय्यार रहें। कृष्णापुरी की युवतियाँ सहज ही में हाथ लग जायेंगी। लेकिन कुमार पर कोई भी उंगली न उठावे।

कुमार ने सारी कथा सुनली। वह चुपचाप दबे पाँव वहाँ से मठ में आकर लेट गया। पर उद्विग्नता के कारण उसे नींद न आई।

# [ ११ ]

प्रातः काल का उज्जवल प्रकाश धीरे-धीरे फैल रहा था। रजनी का अंधकार क्रमशः उषादेवी की आभा में विलीन होता जा रहा था। मन्द-मन्द शीतल समीर प्रवाहित हो रही थी मठ के आँगन में अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि आ रही थी। उसके सुशीतल स्पर्श से कुमार का उत्तप्त मस्तिष्क कुछ शाँत हुआ उसने शयनागार का परित्याग किया। निद्रित आश्वारोही भी जगाए गए। आज अन्य दिवसों की अपेक्षा कुमार ने दैनिक यात्रा के लिए विशेष सावधानी से तय्यारी की कुमार को अब पूरा विश्वास होगया कि पिंडारी विश्वास-घातक है। पर वह स्वंय उस प्रदेश में बिल्कुल अपरिचित था। अतः पिंडारी की सहायता अनिवार्य्य थी। आगा पीछा सोच-समझ कर वह अपने दल के साथ मठ से बाहर हुआ। तब वह कपटी मित्र टट्टू पर चढ़ा हुआ कुमार के दल में आ मिला।

कुमार सुन्दर ने झिड़क कर पूछा—नालायक तू रात भर कहाँ ग़ायब रहा।

यह तो आपको मेरे कपड़ों से ही पता चल जायगा।

कुमार ने देखा कि उसके शरीर पर जो कपड़े थे उन में घास फूस लगा हुआ था।

कुमार—"तू तो इस लायक भी नहीं है कि तुझे तृण-शय्या मिले। तृणशय्या तो परोपकारी तपोधनों की वस्तु है न कि तुम्हारे जैसे दुष्टों की।"

हयात-"जनाब मेरे ऊपर जो कुछ गुज़री सो तो गुज़री ही मेरा टट्टू आराम में रहा। उसे खाने और रहने की सब सुविधा थी।

पिंडारी की ऐसी बातें सुन कर कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्यो वह समझता था कि उसका हेतु मुझ से छिपा हुआ है! सुन्दर ने आगे छेड़-छाड़ न की। वह पुनः दोनों महिलाओं के साथ-साथ चलने लगा।

वह दोनों के साथ जा तो रहा था किन्तु और दिनों की भाँति कुछ बात-चीत नहीं करता था। महिलाओं को संदेह हुआ कि आज कुछ न कुछ बात अवश्य है, वीर युवक चिन्ताग्रस्त दीख पड़ता है।

कुमार ने मन ही मन विचारा कि आज शिकार बधिक के हाथ प्रायः पड़ ही चुका था। किन्तु ईश्वर का

धन्यवाद है, जिसने उस जाल से निर्मुक्त कर दिया। उसने इस आशय को महिलाओं पर प्रकट न होने दिया।

हेमाँगिनी ने मौन भंग करते हुए कहना प्रारम्भ किया— "भाई! आपके कार्य बड़े गूढ़ होते हैं। उनका तार-तम्य जानना सहज नहीं है। क्या आज हम लोगों पर कोई बड़ी विपत्ति आने वाली है?

आशाबाला अब तक चुप थी। अब वह भी बोली—"मुझे भी यही प्रतीत होता है। हे मा जगदंबिके, हम अबलाओं की लाज तेरे हाथ है! रावण कीचक और बाली सदृश्य पर-स्त्री पीड़क पराक्रमियों का विनाश तेरी अनुकम्पा से हुआ तो तेरी कृपा से क्या हमारा क्लेश दूर न होगा?"

कुमार—कोई चिन्ता की बात नहीं है। परन्तु आप से मैं यह पूछना चाहता हूं कि आप मुझ पर विश्वास रखती हैं न?"

हेमाँगिनी—आप का विश्वास! अवश्य! लेकिन ऐसा प्रश्न क्यों?

आशाबाला—हमें आप पर पूर्णतः विश्वास है। इसमें कभी किसी प्रकार कमी नहीं आयगी। और यदि आपने हमारे साथ विश्वासघात किया तो संसार भर से सज्जनता उठगई समझनी चाहिये

कुमार—" वास्तव में बात यह है कि पडारी ने लंबोदर नगर को जाने का जो मार्ग निश्चित किया है मैं उसे

छोड़ने में ही मंगल देखता हूँ। यदि हम लोग मंगराँव के निकट शोणभद्र न पार करें और यहीं से सीधे इसके किनारे का मार्ग पकड़ें तो मठ तक निरापद पहुँच जायँगे। परन्तु यह मार्ग महाराज जयसिंह द्वारा निर्दिष्ट पथ से भिन्न होगा। मैंने मठ में यह भी सुना है कि शोणभद्र के दक्षिणी तट पर लुटेरों का अड्डा है। उन्हें दमन करने की इच्छा से मानगढ़ी सेना ने प्रयाण किया है। और दोनों ही बातें आप लोगों के हित की दृष्टि से बुरी हैं। आपको इस नये मार्ग के सम्बन्ध में कोई आपत्ति तो नहीं है।

आशा०—मैं आपके मार्ग परिवर्तन के विचार से पूर्ण सहमत हूँ।"

हैसाँगिनी—बहन मैं भी तुम से सहमत हूँ क्योंकि यह तेजस्वी युवक जो कुछ सोचता है हमारी भलाई के लिए। परन्तु जयसिंह की आज्ञा का उल्लङ्घन होता है क्योंकि प्रस्थान के समय उन्होंने निर्दिष्ट पथ का अवलम्बन करने का जोरदार शब्दों में कई बार कहा है।"

आशा०—"हम लोग उनकी आज्ञा क्यों मानें ? हम क्या कोई उनकी प्रजा या क्रीत दासियां हैं, उनके बह-काने में पड़कर मैं प्रार्थी बनकर उनकी शरण में गई, किन्तु उन्होंने उसकी लाज न रक्खी। मेरी समझ से तो हमें इस युवक के परामर्श के अनुसार ही काम करना चाहिये।

कुमार के आनन्द की सीमा न रही। वह बोला—"ईश्वर आपका मंगल करें। आप मुझ पर जितना विश्वास रखती हैं—यदि मैं उसके अयोग्य होऊँ तो इस जीवन में मुझे चील-कौवे नोंच-कर खाएँ और मरणांतर भी मुझे सदा नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ें। मेरी आत्मा, इन्हें भी अपने पाप का पूर्ण प्रायाश्चित नहीं समझेगी—ऐसा कहते हुए वह घोड़े को ऐड़ लगाकर पिंडारी के पास जा पहुँचा।

पथ-प्रदर्शक पिंडारी से कुमार की बातें होने लगीं। उसने कहा मैं निर्दिष्ट मार्ग में कुछ परिवर्तन करना चाहता हूँ। मेरी जिम्मेवारी बहुत भारी है। इस में छल-कपट अथवा विश्वासघात की बू तक नहीं है। मैं किसी प्रकार इन स्त्रियों को सुरक्षित रूप से लम्बोदर मठ की शीतल छाया में पहुँचा दूँ— यही मेरा उद्देश है। और जब उद्देश-सिद्धि मार्ग क्रम में कुछ हेर-फेर करने से हो सकती है तो शोणभद्र को पार करके दक्षिण किनारे चलना व्यर्थ सा ही है। यहाँ से सीधे चलने से लम्बोदर मठ निकट भी पड़ेगा। फिर भला ऐसा सुगम मार्ग पाकर कौन विचार-शील व्यक्ति दुर्गम तथा विकट मार्ग का अनुसरण करेगा।

हयात—"शोण के दक्षिण तट से होकर चलना आवश्यक है क्योंकि इन लोगों ने यात्रियों का आडम्बर बनाया है। जिन यात्रियों को व्याघ्रसर जाना होता है वे नासीरी-

गंज के निकट से कदापि पार नहीं करते। इसके अलावा महाराज ने जो राह बताई है उसके विरुद्ध चलने में हमारी कुशल नहीं है।"

कुमार—"यदि मार्ग-परिवर्तन के कारण हम लोगों पर दोषारोपण किया जाय तो हमारे पास उत्तर बना बनाया है। हम कहेंगे कि बताई हुई राह पर चलने में अनेक भय थे। एक तो बलराम की दुष्टता का डर था दूसरे अनेक सशस्त्र चोर–डाकू भरे पड़े थे। ऐसी अवस्था में उस राह का परित्याग न करना जान बूझ कर आफ़त बुलाना था।

पिंडारी—"आप जो उचित समझें करें। मुझे इस विषय में कुछ नहीं कहना है। आप दक्षिण तट से चलें चाहे उत्तर से, मेरे लिये एक जैसा है। मैं तो हर हालत में मार्ग दिखाने को तय्यार हूं। पर आप स्वयं अपने स्वामी को क्या उत्तर देंगे यह सोच लीजिये।

कुमार को यह देख कर कि पिंडारी इतने सहज में सह-मत होगया, बड़ा आश्चर्य हुआ। इस समय भी राह दिखाने की ज़रूरत थी। पर रह-रह कर कुमार के हृदय में भय का संचार होता था। वह सोचता था कि इस की धोखेबाज़ी मैं ने चलने नहीं दी। न जाने मेरे प्रति इसका कैसा वर्ताव रहेगा इसके द्वारा सब कुछ सम्भव है।

शीघ्र ही पूर्व निश्चित पथ का अनुसरण करना छोड़; सब नये मार्ग पर चल पड़े। वे बड़ी तेजी से चलते रहे। मार्ग में विघ्न-बाधा का नाम न था। दूसरे दिन सवेरे यह दल अपने निश्चित स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ पहुंचने पर विदित हुआ कि महन्त जी महाराज लम्बोदर नगर के मठ में नहीं हैं। आप उस स्थान से एक मील की दूरी पर किसी उद्यान में वास करते हैं। जागीर की आय से आपने यहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग बनवा रक्खा था। आप केवल धर्म के ही नहीं धन के भी अधिकारी थे। धन की रक्षा की जरूरत होती है। अतः महन्त जी ने भी जान-माल की रक्षा के लिए उपर्युक्त उद्यान में एक दुर्गमय मंदिर बना कर उसमें जागीर का खज़ाना संचित कर रक्खा था। स्वयं भी स्वास्थ्य का बहाना करके वहाँ छिपे रहते, क्योंकि नगर की अवस्था शोचनीय थी। सारी जनता विद्रोह करने पर तुली हुई थी। उन्हें यह भी भय था कि, मठ में वास करने से कहीं विद्रोही अचानक आक्रमण करदें।

कुमार को महन्त से मिलना आवश्यक था। अतः वह—"शोण मन्दिर" को गया। कृष्णपुरी की महिलाओं के शुभागमन का समाचार पहुँचाया गया। बड़े सम्मान और स्वागत के लिये उनका सभा-भवन में प्रवेश हुआ। गद्दी से उठकर महन्त जी अन्य सभासदों के साथ आगे बढ़े। आपने पूर्ण आदर-भाव के साथ आगंतुकों का स्वागत

किया। महन्त जी ने दोनों महिलाओं को अपना चरण नहीं छूने दिया।

महन्त ठंठपाल मानसिंह के बड़े दोस्त थे। मानसिंह लम्बोदर मठ की जागीर कभी अपनी ही समझता था। महन्त जी सदा उनकी आज्ञा में रहा करते थे। अतः मानसिंह उसे कई बार जागीर की प्रजा का उपद्रव शांत करने में सहायता दे चुका था। जो निश्चय कर लेता उसे पूरा करके छोड़ता था। उसका कहना था कि महन्त तो मेरा भाई है।' यदि कोई ठंठपाल को तंग करेगा तो उसके लिये मानगढ़ की तोपें सदा तय्यार हैं। मान के स्वभाव से कौन परिचित न था? उसके सैन्य-बल का किसे पता न था? ऐसी अवस्था में कोई उसके विरुद्ध आवाज कैसे उठाता किंतु लंबोदर नगर के लोग धन-मदमत्त थे। वे मान की भी परवा नहीं करते थे और सारा नगर महन्त जी से असन्तुष्ट था।

महन्त जी ने दोनों युवतियों को बहुत आश्वासन दिया और कहा कि मैं मानसिंह का क्रोध शान्त करने की चेष्टा करूंगा। आशा है कि मेरी चेष्टा का परिणाम अच्छा ही निकलेगा। एक बात और है जिस कामबाणसिंह को आप पसंद न करती थीं वह अब मानसिंह का प्रिय-पात्र नहीं रहा है। मानगढ़ के और बहुत ऐसे कर्मचारी हैं जो उसे नहीं चाहते। मानसिंह राजनीति-कुशल हैं। एक

व्यक्ति के लिये वह सब को अप्रसन्न करना नहीं चाहते। अतः ठाकुर कामवारणसिंह के कारण राजा साहब अब आप लोगों को कष्ट न देंगे। आशा है कि अति शीघ्र आप लोगों के बीच पूर्ववत मैत्री हो जायगी। मैं भी आप लोगों की रक्षा के लिये कुछ उठा न रखूंगा मानसिंह से भी आप की यथासाध्य रक्षा की जायगी। ऐसा कहते कहते महन्त ने एक उर्ध्वश्वास लिया जिससे स्पष्ट था कि उन्हें अपनी शक्ति का भरोसा न था। परन्तु वास्तविक अवस्था का चित्रण वह खुले शब्दों में करना नहीं चाहते थे।

महन्त जी महिलाओं को अपनी बहन के कमरे में ले गए वहाँ सत्कार की रही सही कमी पूरी की गई। शोणमन्दिर का सञ्चालक ऐसा अफसर था जो न पूरा गृहस्थ और न पूरा वैरागी ही था। अभ्यागतों के सत्कार का प्रबन्ध उसी की आज्ञा से होता था। उसने कुमार की खूब खातिर की क्योंकि महन्त बाबा की आज्ञा थी कि नवयुवक को किसी प्रकार कष्ट न हो। जय नगर से जो अन्य लोग आए थे उन्हें भी यथायोग्य स्थान मिले।

दूसरे दिन कुमार ने शोण मन्दिर से एक दूत महाराज जयसिंह के निकट संवाद ले कर भेज दिया कि कृष्णपुरी की महिलाएं आप की इच्छा के अनुकूल लंबोदर मठ पहुँच गईं। कुमार ने हयात को बता दिया कि उसका अप-

राध कैसा अद्भमय था। पर उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे पचास रुपये पुरस्कार स्वरूप दिए।

आशा बाला कुमार से अलग कर दी गई थी। अतः युवक के चित्त में निश्चित अशाँति-सो छाइ रहती थी। उसका शोणमंदिर में अकेले जी न लगा। अतएव उसने लम्बोदर नगर देखने की इच्छा की। एक मील की दूरी तय करनी थी। कि वह भी सामने आगया। नगर चारों ओर ऊँची दीवार से घिरा हुआ था। धन संपत्ति के कारण वह उस समय केवल भोजेपुर का सर्व सम्पन्न नगर था।

[ १२ ]

नगर, गगन चुंबी अट्टालिकाओं से भरा हुआ था। दोनों ओर गोदामों तथा दुकानों में संसार की सर्वोत्तम वस्तुएँ भरी पड़ी थीं। उन में कवचों की भरमार थी। राज-पथ पर पृथ्वी के प्रायः प्रत्येक देश के लोग दृष्टिगोचर होते थे। माल से भरी तरह तरह की गाड़ियाँ आती जाती रहती थीं।

कुमार ने इसके पूर्व न कहीं ऐसी सम्पत्ति देखी थी न किसी नगर की सड़कों में ऐसी भीड़ पाई थी। समस्त जगत के वैभव ने मानों वहीं डेरा जमा लिया था। सुन्दर नगर में भ्रमण कर रहा था। कुमार वहाँ गया। और काल भैरव की रत्नजटित विशाल मूर्ति के दर्शन किये।

उसे परदेसी जान कर असंख्य नागरिक उसके चारों-ओर जमघट लगाने लगे। इस समय तक कुमार लम्बोदर नगर की गलियों में स्वतंत्र रीति से विचरण करता था किन्तु अब उसकी गति में बाधा होने लगी।

उल्लसित नगर उस पर टूटा पड़ता था। उन नागरिकों को पूर्णतया विदित था कि पंजाबी संरक्षक मण्डल महाराज जय सिंह को प्राणप्रिय है। अतः नगर में उस के एक सदस्य की उपस्थिति अवश्य ही उत्साह वर्धक थी। लोगों को दृढ़ विश्वास होगया कि जय सिंह खुल्लम खुल्ला हम लोगों की सहायता करेंगे।

कुमार ने पार्श्वगामी प्रणवीर और सरोज नामक दो मुख्य नागरिकों को सम्बोधन कर के धीरे से कहा—आप के चतुर नागरिक समझ गए कि मैं किस उद्देश से यहाँ आया हूँ। अब यदि आप लोग मुझे सार्वजनिक सभा में ले चलें तो मुझे वहाँ कुछ-न-कुछ स्पष्टतया कह देना पड़ेगा। परन्तु महाराज की कठोर आज्ञा है कि कतिपय बातें एकांत में केवल प्रणवीर और सरोज से ही कहना।

इतना ही कहना जादू सा काम कर गया। दोनों नागरिकों ने संपूर्ण-श्रेय-प्राप्ति की इच्छा रखते हुए लोगों पर प्रकट किया कि इस समय कुमार को छोड़ दिया जाय। अपने आवश्यक कार्यों की पूर्ति करके वे सभा में उपस्थित होंगे। इस प्रकार कुमार को जन-समूह से छुटकारा मिल गया।

कुमार शीघ्रता पूर्वक प्रणवीर के भवन में प्रविष्ट हुआ। घर में प्रवेश करते ही कुमार ने अपने सिर का कवच उतार दिया और एक साधारण टोपी पहन ली। किन्तु धड़ के

ऊपर अभी कई चीजें ऐसी थीं जिनके कारण उसे पहचान लेना सुगम था। इससे बचने के लिये, उसने ऊपर से एक चोगा डाल लिया। अब वह अपरिचित लोगों के लिये एक सामान्य नागरिक बन गया।

कुछ देर पश्चात् वह इस अतिथि को अपनी कन्या के साथ छोड़ कर बाहर चला गया। जाते समय वह पुत्री से कह गया कि बेटी! इस अतिथि को समुचित रीति से विदा करना। मैं सरोज के पास जाता हूँ। जिस तरह हो सके, लोगों को समझाना है कि किसी अनिवार्य कारण से महाराज का राजदूत इस समय सभा में उपस्थित न हो सका। ऐसा न करने से उत्सुक नगरवासी अति विक्षुब्ध हो उठेंगे।

पिता के प्रस्थान करने पर आतिथ्य का सारा भार सुन्दरी कन्या पर पड़ा। यद्यपि उसका जन्म चर्मकार के घर हुआ था तथापि रूप-लावण्य और व्यवहारादि में वह संसार भर की अच्छी से अच्छी कन्या रत्नों को मात करती थी।

उसने कुमार को पुष्प बाटिका में से राह दिखाना शुरू किया दोनों ही जलाशय के निकट जा पहुंचे। वहाँ दो नाविक एक छोटी नाव लिये उपस्थित थे। ज्यों ही कुमार नौका में बैठा कि उन लोगों ने "शोणभद्र की जय"— बोलो और देखते ही देखते नाव निकल चली।

डोंगी शोणभद्र की उत्ताल तरंगों पर प्रवाहित हो रही थी। नाविक उसे किनारे लगाने का प्रयत्न कर रहे थे। अब कुमार चिन्ता में पड़ा कि नगर के सम्बन्ध में महन्त से क्या कहूँगा ! नागरिकों ने मुझे भूल से राजदूत समझा। उनसे विश्वासघात करना भी महापाप होगा। यदि नगर की वास्तविक दशा का दिग्दर्शन न कराया जाय तो महन्त के प्रति अन्याय होगा। मैं ऐसी बातें करूँगा जिन्हें सुनकर महन्त भी सतर्क हो जांय और किसी नागरिक को चुन कर दंड भी न दे सकें।

शोणमहल में रहते रहते आज चार दिन बीत चुके थे। रात्रि का अखंड साम्राज्य स्थापित हो चुका था। सारा संसार दिन भर की दौड़ धूप के बाद अब सुख शयन कर रहा था। किसी भीषण हा-हा-कार ने कुमार की निद्रा भंग कर दी। इसी समय हयात उसके शयनागार में जा घुसा और बोला कुमार साहब ! मैं आप को एक खबर देने आया हूं। बलराम ने लम्बोदर नगर के उपद्रवियों का सरदार बन कर एक भारी सेना के साथ शोणमहल पर आक्रमण कर दिया है। अब महन्त की एक न चलेगी। उसका विनाश होना निश्चित है। यदि ऐसे अवसर पर भी उस महिला की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, जो आप को प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है, तो शीघ्रता कीजिये।

हयात कुमार को साथ लिये महल से बाहर निकला। वहाँ मोटे वस्त्रों के बने बुर्कों में ढकी दो स्त्रियां खड़ी थीं। चारों मूर्तियाँ जलपूर्ण खाई को पार कर गईं। बड़ी कठिनाई से कुमार को पता लगा कि उन दोनों स्त्रियों में एक हेमांगिनी थी और दूसरी मंथरा जो कृष्णपुरी की महिलाओं के साथ जयनगर से आई थी।

"हयात ने बड़ी भूल की थी। उसने समझ रखा था कि कुमार हेमाँगिनी के प्रेम-पाश में फँसा है तभी तो उसका रूमाल उसने अपनी बाँह पर बाँध रखा था। परन्तु बात क्या थी, सो पाठकों को पूर्णतया विदित है ही। कुमार ने सिर घुमा कर देखा कि महन्त के संरक्षक इस आकस्मिक आक्रमण के शिकार हो रहे हैं। शोण महल हाथ से जाने ही को था। यह समझ कर कि आशा-बाला की सहायता करना अति आवश्यक है। कुमार उसी ओर दौड़ पड़ा। बड़ी कठिनता से मन्दिर में जा सका। वह अट्टालिका के सोपानों तक गया होगा कि वहां प्रणवीर असहाय अवस्था में दिखाई पड़ा। कुमार को देख कर प्रणवीर को आश्वासन मिला, और कुमार ने भी प्रणवीर की सहायता आवश्यक समझी। अब दोनों आशाबाला के अनुसंधान में लगे।

[ १३ ]

कुमार सुन्दर ने आशाबाला को बहुत देर तक खोजा। अन्त में वह एक एकान्त मन्दिर में पहुंचा। उसने देखा कि भगवती की विशालमूर्ति के समक्ष एक युवती घुटने टेके रो-रो-कर प्रार्थना कर रही है। जब उसने पैरों की आहट पाई तो और भी डरी। वह शोक तथा भय से विह्वल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। कुमार ने कहा "देवी! भय की कोई बात नहीं है। शान्त होओ, मैं शरीर में प्राण रहते बड़ी-बड़ी सेनाओं का सामना करके भी तुम्हारी रक्षा करूँगा।

अब आशाबाला ने अपने आपको संभाला और कहा "कुमार ईश्वर सचमुच दयालु है जो उसने तुम्हें मेरे पास भेज दिया। मुझे तो विश्वास हो गया था कि पृथ्वी के सभी प्राणियों ने मुझ से नाता तोड़ लिया है। अब कभी मुझे अकेली न छोड़ना।"

कुमार—नहीं देवी! कदापि नहीं। चाहे जैसी विपत्ति क्यों न आ पड़े, मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।

इसके बाद कुमार प्रणवीर की ओर घूर कर बोला—"आप हमारी सहायता करें ? आपके मित्र महाराज जयसिंह ने इस देवी को मेरी देख रेख में भेजा था। यदि आप अत्याचारों से इसकी रक्षा न करेंगे तो महाराज आपके नगर पर अप्रसन्न हो जायँगे। हमें इस बात का ध्यान रखना है कि यह महिला बलराम के हाथ न पड़ जाये।

प्रणवीर ने कहा—"कुमार अभी तुम इस युवती की रक्षा करो।

यह कह कर उसने खिड़की से सिर बाहर निकाला और पुकारना शुरू किया—"नागरिको ! लम्बोदर नगर तुम लोगों का है।

ऐसा कह कर उसने सीटी बजाई। बात-की-बात में दो-चार अनुचर जो उसके चर्मकार-सङ्घ के थे आ उपस्थित हुए। और भी अनेक व्यक्ति एकत्र हुए और उसने एक दल बनाकर उस खिड़की के नीचे पहरा देना प्रारम्भ किया जहाँ से उनका नायक चिल्ला रहा था। उन लोगों ने एक दूसरा दल भी बनाया जिसको महल के पीछे की राह पर संतरी का काम दिया गया। अब प्रणवीर का सहायक गोपाल भी आ पहुँचा।

गोपाल बोला—शोणमहल पर 'बलराम का अधिकार होने ह वाला है। यह महन्त से भी बुरा पड़ोसी होगा। अब वह इस संदेह में पड़ा है कि "महन्त" की उपाधि लें

अथवा "राजकुमार" की। बुड्ढे महन्त के साथ भी बड़ा बुरा व्यवहार किया गया है।

प्रणवीर—मुझ से ऐसा कदापि नहीं देखा जा सकता। मैं महन्त के आधिपत्य से घृणा करता था न कि उस बूढ़े व्यक्ति से। ऐसा अन्याय कभी नहीं हो पायेगा।

गोपाल—बहरा नग्गू जो नगर का प्रसिद्ध क़साई है। अड़ोस-पड़ोस के उपद्रवी लोगों के साथ बलराम से जा मिला है। इस के दो प्रधान कारण हैं। पहला कारण यह है कि उस धूर्त बलराम ने घड़े-के-घड़े शरबत और पूरी मिठाई का प्रबन्ध किया है। मान-मर्यादा का आचार-विचार छोड़ कर वे उसकी ओर जा मिले। दूसरा कारण आप जानते ही हैं। उनका हम लोगों के साथ मन-मुटाव है। हम लोग श्रमजीवी हैं। वे हमारी रोजी देख नहीं सकते। आप को इस विषय में आश्चर्य न होना चाहिये।

प्रणवीर—"अच्छी बात है। हम लोग शीघ्र ही नगर में चलें। शोणमहल में ठहरने की आवश्यकता नहीं है।

गोपाल—"महाशय! इस प्रासाद के सभी पुल ऊपर उठा लिए गए हैं। फाटकों में ताले पड़ गए। भीमचूल्हे के बदमाश बर्छियों से उनकी रखवाली कर रहे हैं। यदि हम लोग किसी प्रकार से बाहर जाने की चेष्टा करें तो ये लुटेरे हमें अवश्य मार डालेंगे। उन्हें हत्या-पाप आदि का कुछ भय नहीं होता।

अब प्रणवीर कुछ घबराया और बोला—"पता नहीं चलता कि बलराम ने फाटक क्यों बन्द करवा दिये। हम लोग निर्दोष हैं। हम लोगों को कैद करके वह क्या लाभ उठायेगा ?"

पीताम्बर—"इसका उत्तर देना मेरे लिये कठिन है। किन्तु कृष्णापुरी की युवतियों के लिये हल्ला मच रहा है। वे उसी समय महल से निकल भागी थीं जिस समय आक्रमण हुआ था।"

प्रणवीर ने अशाँत नेत्रों से कुमार की ओर देखा, वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था। कुमार ने सारी बातें सुन ली थीं। उसे भी भय हो रहा था। उसने सोचा कि यदि मैं अपनी बुद्धि का सदुपयोग ऐसे अवसर पर नहीं करता हूं तो सर्वनाश की घड़ी आ पहुँची है। पुनः प्रणवीर को धैर्य दिलाने की भी आवश्यकता है। बोला "प्रणवीर जी आपने नेतृत्व इसी साहस पर ग्रहण किया है? मुझे तो आप की अवस्था पर लज्जा आती है। आप इस तरह हक्के बक्के हो गए कि अपने कर्तव्याकर्तव्य का भी निर्णय नहीं कर सकते? आप बलराम के निकट जाँय और निर्भीक होकर कहें कि मेरे साथ मेरा सहायक है। एक संरक्षक है तथा एक मेरी कन्या है। हम लोगों को बिना रोक-टोक यहां से बाहर जाने दिया जाय, वह आपको कैद क्यों करने लगा।"

"प्रणवीर—मैं तथा मेरा सहायक गोपाल इस प्रकार दोनों हम हुए। किन्तु मेरा संरक्षक कौन है ?"

कुमार ने निडर होकर कहा—"संरक्षक तो मैं हूँ और जब तक हम लोग इस प्रासाद के भीतर हैं तब तक यह देवी आपको पिता कहकर संबोधित करेगी।"

इतना सुनते ही कुमारी नागरिक के पैरों पर गिर कर बोली—" जब तक यहाँ हूँ तभी तक नहीं। मैं आप को आजन्म श्रद्धा की दृष्टि से देखूंगी और आप का सम्मान करूंगी। इस विपत्ति से उद्धार कीजिए।

प्रणवीर—" अच्छी बात है ! यह मेरी कन्या होगी ! अपना शरीर काले रंग के रेशमी बुर्के से ढकलो। यदि अपने नेता की कन्या को बचाने में भी श्रमिक-संघ के वीर समर्थ नहीं हुए तो उन्हें वीर कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। पर यदि मुझसे पूछा जाय कि आपकी कन्या रक्त-पात के समय यहाँ कैसे आई तो मैं क्या उत्तर दूंगा ?

गोपाल—"यह ठीक है कि यहाँ किसी स्त्री का आना आश्चर्य की बात है किन्तु लंबोदर नगर की आधी से अधिक स्त्रियां भी तो यहाँ तक हमारे पीछे-पीछे आई थीं ? इस का एकमात्र कारण यह था कि महन्त के शासन-काल में किसी स्त्री को शोण महल देखने का अवसर प्राप्त न हुआ था इसी प्रकार यह भी यहां तक पहुंच गई। बस इतना प्रर्याप्त है।"

कुमार—"प्रणवीर जी! आप प्रणवीर ही नहीं बल्कि धर्मवीर भी हैं। नारी रक्षा पुरुषों का प्रधान कर्त्तव्य है। आप इस भद्रपुरुष की सम्मति के अनुसार काम करें। थोड़ा साहस चाहिये। आप का बाल तक बाँका न होगा। देवी तुम इस बुर्के को डालकर सारा शरीर ढकलो। विश्वास रखो कि तुम्हें साहस का बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा। तुम एक बार फिर स्वतंत्र एवं निरापद हो जाओगी।" ऐसा कहते हुए उसने इधर-उधर पड़े हुए अनेक वस्त्रों की ओर इशारा किया। संकेत पाते ही आशाबाला ने सावधानी से बुर्का पहन लिया। तब कुमार ने प्रणवीर से कहा चलिये।

शोणित मन्दिर का एक आँगन पार हुआ दूसरा आ गया। जहाँ देखो वहाँ रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी। मृतकों के धड़ इधर-उधर पड़े थे। आहत पुरुष जिनके जीवन का अंतिम पटाक्षेप अब तक न हुआ था, निष्ठुर मृत्यु की प्रसन्नता के लिए तरह-तरह के हाव-भाव दिखा रहे थे। उस भयानक दृश्य के समय अबला की कैसी अवस्था हुई होगी, कहीं धैर्य उसका साथ छोड़ न दे। इसके निमित्त कुमार रह-रह कर उसके कानों में साहस शान्ति तथा शक्ति का संदेश भरता जाता था। वह उसे स्मरण दिलाता था कि इस समय दृढ़ निश्चय और वीरत्व प्रधान बुद्धि की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अपने नवयुवक संरक्षक का सहारा लेकर उसने उस भयानक भवन में प्रवेश किया। आगे आगे प्रणवीर था, उसके पीछे उस का सहायक था। उनके पीछे प्रायः एक दर्जन चर्मकार-संघ के सदस्य थे।

शोण महल के सभा भवन में एक बड़ी सभा लगी हुई थी। अति शीघ्रता के साथ महन्त का सिंहासन खींच लाया गया। उसके सिर पर बलराम बैठा था। बलराम बनमानुष उपाधी से प्रसन्न होता था उसने महन्त के उन सभी वस्त्रों को धारण किया था जो विजयादशमी आदि के अवसर पर काम में लाये जाते थे। किंतु उसने झिलम-बख़्तर शरीर से अलग नहीं किया था। इस समय भी उसके पास युद्ध के सारे सामान प्रस्तुत थे। केवल मुकुट अलग रख छोड़ा था। ऊपर से एक लम्बा-लबादा पहन लिया था जिस पर तरह-तरह के जङ्गली जन्तुओं के चित्र बने हुए थे।

चारों ओर उसके सैनिक और अफ़सर बैठे थे। बीच बीच में लंबोदर नगर के लोग भी दीख पड़ते थे। उनका बहरा नग्गू प्रधान था। वह बलराम से प्रायः सटकर बैठा था। कुहनी तक उसके दोनों हाथ नंगे और नर-रक्त से सराबोर थे।

भोजन की तैयारी भी वैसी ही थी। सोने-चाँदी के पात्रों पर भी मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं क्योंकि रक्त

रंजित हाथों से उनका स्पर्श किया गया था। महन्त के जितने पवित्र पात्र थे, यहाँ तक कि पूजा के पञ्चपात्र भी सभी उस स्थल पर लाए गए और उन का उपयोग मदिरा पान तथा मांस भक्षण में किया गया।

'सभा क्या थी, डोमड़ों की हाट थी। शोर गुल के मारे कानों के पर्दे फटे जा रहे थे। ज्योंही प्रणवीर वहाँ पहुँचा तो उस मजलिस के वीभत्स दृश्य ने उसे अधीर-सा बना दिया। साहस जाता रहा। आंतरिक दुर्बलता प्रायः फूट कर निकलने ही को थी कि गोपाल ने तेवर बदल कर सरोष नेत्रों से अपने स्वामी की ओर देखा और धीरे से कहा' "यह कायरता प्रकट करने का अवसर नहीं है।"

अब प्रणवीर के हृदय में साहस का संचार हुआ। उसे अपने पद का पुनः ध्यान हो आया। उसने बलराम को विजय प्राप्ति पर बधाई दी। उसने भीमचूल्हे के सैनिकों तथा लम्बोदर नगर के लोगों की भी प्रशंसा की। महन्त की पराजय में यही नागरिक सहायक हुए थे।

बलराम ने कठोर वचनों का प्रयोग करते हुए उत्तर दिया—"हाँ, बहुत ठीक। नागरिकों ने पूरी सहायता पहुँचाई है। परन्तु प्रणवीर जी! आप रति को कहाँ से ला रहे हैं? यह महिला कौन है? बुर्क़ा शीघ्र हटाइये।

प्रणवीर—"वीर नायक! यह मेरी कन्या है। इस पर एक संकट आ गया था; अतः उसने त्रिदेवों के नाम पर

अन्य उपचारों के साथ-साथ बुर्क़ा पहनने की भी प्रतिज्ञा की है। अब तीन दिन और शेष रहे हैं।"

बलराम—"मैं शीघ्र ही इसे प्रतिज्ञा से मुक्त किये देता हूँ। मेरी तलवार देखी है ना? एक क्षणभर ही में महन्त बन बैठूँगा। मेरी तो अटल धारणा है कि एक सदेह महन्त अदेख त्रिदेवों से कहीं बढ़ कर है। मेरे पूर्ववर्ती महन्त को लाकर इस आसन पर बिठाओ।

भवन में अब और भी हुल्लड़ मचा। प्रणवीर को उच्चासन मिलने लगा किन्तु उसने उसे ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। वह सिंहासन के एक अन्तिम किनारे पर जा बैठा। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था। प्रणवीर के अनुयायियों की दशा भेड़ों की-सी थी। जब कोई अपरिचित कुत्ता झुण्ड में पहुंच जाता है तो सारी भेड़ें अपने दल के अनुभवी तथा बृद्ध कुत्ते के पीछे पूँछ सटका कर खड़ी हो जाती हैं। उन्हें अपनी शक्ति का तनिक भी विश्वास नहीं रहता। वे समझती हैं कि बूढ़ा कुत्ता उनकी रक्षा करेगा क्योंकि उसके शरीर में अतुल बल, साहस तथा विवेक है। प्रणवीर के अनुयायी भी उसकी पीठ पर थे। उसी स्थान पर एक अति सुन्दर लड़का बैठा था। लोगों का कहना था कि वह बलराम का एकलौता बेटा है। कभी-कभी वह नर-पशु उसकी ओर प्रेम पूर्वक देखता था और उसकी आकृति में कुछ कोमलता की झलक भी

आ जाती थी। कुमार सुन्दर को ये बातें पहले ही महन्त से मालूम हो गई थीं। अतः वह जान-बूझ कर उस लड़के के समीप बैठ गया। उसने मन में ठान लिया कि यदि रक्षा के सारे उपाय विफल हो जायँ तो यही लड़का ढाल का-सा काम देगा।

सभी लोग संभ्रम में पड़े थे। महन्त ठंठपाल जो कुछ काल पूर्व शोणमहल के स्वामी थे लम्बोदर नगर की जागीर पर जिनकी तूती बोलती थी, जो उच्च वंश में उत्पन्न होने का गर्व रखते थे, अब सामान्य अपराधी की भाँति सिपाहियों द्वारा बांध कर लाये गये। जिस भवन में वह शुभ अवसरों पर भारी-भारी-भोज दिया करते थे उसी में बलराम के क्रूर सिपाही उन्हें घसीटने लगे। बाल बिखरे हुए थे। दाढ़ी इधर-उधर छितराई लटकी थी। शरीर पर जो वस्त्र थे वे भी उचित रीति से नहीं पहने गये थे। कुछ लोगों ने उन्हें तिरस्कार पूर्वक महन्त पर फेंक दिया था।

अब महन्त जी ठीक उसी स्थान पर खड़े किये गये जहाँ बलराम के पैर रक्खे थे। यद्यपि इसके पूर्व महन्त जी अपनी सीधी प्रकृति एवं कोमल स्वभाव के लिये प्रसिद्ध थे तथापि इस आपत्ति की शृंखला पर आरूढ़ होकर उन्होंने जगत् को दिखा दिया कि प्रतिष्ठित वंश में क्या विशेषता रहती है। उन्होंने अपने पद के अनुकूल ही गम्भीरता तथा धैर्य धारण कर लिया।

अब "बन-मानुष" बोला—"ठंठपाल ! मैंने सदा तुम से मैत्री करनी चाही, किन्तु तुमने उसे सदा अस्वीकार किया। क्या इसके लिये कोई बहाना है ? नग्गू ! तय्यार हो जाओ !"

बधिक नग्गू उठा। उसने रक्त रंजित तलवार उठाई और धीरे-धीरे महन्त के पीछे जा खड़ा हुआ। उसकी भुजायें सुदृढ़ तथा गठीली थीं। वे तलवार के साथ शनैः २ ऊपर उठने लगीं। केवल वार करने की देर थी।

बलराम—"ठंठपाल ! उस आदमी को देखो और अपनी अवस्था पर विचार करो। बोलो, इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय है ?"

महन्त ने शांत भाव से उत्तर दिया—"हाँ, मेरी मौत आ गई है। किन्तु तेरे पाप अपार हैं। अच्छा उपाय सुन ले। मैं विख्यात वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा आचरण शुद्ध एवं पवित्र है। तूने मेरे प्रति अनेक व्यक्तिगत अपराध किये। मैं उन सबों को क्षमा करता हूँ। अब तू दुष्टों तथा अपराधियों का नेतृत्व छोड़ दे। लूट का माल लौटा दे। जिन्हें तेरे कारण पितृहीन, अनाथ, तथा विधवा बनना पड़ा है, उनकी जीविका के लिये शेष संपत्ति अर्पण कर दे। बल्कल धारण कर। शरीर में विभूति रमा ले। हाथों में दण्ड कमण्डल ले। नंगे-पाँव चारों धाम घूम। तेरे जीवन के लिये मैं सूक्ष्म नागपुर की महासभा से प्रार्थना

करूँगा। तीर्थाटन से लौट आने पर बनारस के पण्डितों से वेदविधि द्वारा तुझ से यज्ञ-हवन आदि अनुष्ठान कराऊंगा। तेरी आत्मा को फिर शांति प्राप्त हो जायगी।

ठंठपाल की बातों से विदित होता था मानो वह अब तक महन्त ही हैं। उनके स्वर में निर्भयता थी। अब "बन मानुष" धीरे-धीरे अपने आसन से उठा। क्रमशः उसके आश्चर्य का स्थान क्रोध लेने लगा। ज्योंही महन्त का कथन समाप्त हुआ कि उसने नग्गू की ओर दृष्टि दौड़ाई। और उंगली उठा कर ईशारा किया। हत्यारे ने ऐसी आसानी से तलवार का बार किया कि महन्त के प्राण-पखेरू उड़ गए। निष्प्राण शरीर उसी आसन के नीचे प्रृथ्वीतल पर लोट गया जहाँ बैठ कर वह इसके पूर्व न्याय किया करता था। लम्बोदर नगर के लोग समझते थे कि महन्त तथा बलराम पारस्परिक संभाषण के पश्चात् कुछ शर्तें निश्चित करेंगे जिनके अनुसार फिर शान्ति हो जाएगी। वे अपनी आंखों के सामने महन्त की हत्या के लिये कदापि तय्यार नहीं थे। अतः बहुतों के मुख से निकल गया कि धर्म का पराभव हुआ। अनर्थ की सीमा नहीं। प्रत्येक नागरिक के मुख से प्रतिकार की भीषण ध्वनि निकलने लगी। सभा भवन तुमुलनाद से फटा जाता था।

बलराम ने घोर गर्जन-तर्जन किया। अपनी विशाल भुजायें बढ़ाईं। बोला यह क्या गड़बड़ है? क्या लम्बोदर

नगर के शृगाल भीमचूल्हा के सिंहों का सामना करेंगे? क्या शोणभद्र के केकड़े बकों को चबायेंगे? मेरे वीरो! अपनी बर्छियाँ चमकाओ। इन कूप-मंडूकों को मालूम हो जाय कि दुनिया कितनी बड़ी है।

उसके अनुयायियों में से प्रत्येक व्यक्ति आज्ञा पाते ही उठ खड़ा हुआ। पाठकों को विदित है कि बलराम के सैनिक तथा शांतिप्रिय नागरिक एक साथ मिलजुल कर बैठे थे। अतः हर एक ने अपने निकट के नागरिक का गला एक हाथ से पकड़ लिया और दूसरे हाथ में एक कटार उठाई क्योंकि बर्छी चलाने की जरूरत न जान पड़ी। दीप-शिखा के प्रकाश में तथा चन्द्रमा की ज्योति के सम्मिश्रण से उस भवन में एक विचित्र आलोक—फैल रहा था। जब हत्यारों ने अपनी बाँहें उठाईं तो सारी सभा में कटारों की चमक सघन मेघ-खण्डों पर बिजली की भाँति दौड़ गई। किन्तु प्रत्येक नागरिक इस आकस्मिक दुर्घटना के कारण मूक सा खड़ा रह गया। अतः एक भी कटार किसी पर न गिरी। सम्भवतः बलराम का यह अभिप्राय था कि इन नागरिकों के हृदय में केवल भय का संचार कर दिया जाय।

ठीक इसी समय कुमार ने साहस से काम लिया। वह प्रोत्साहित होकर आगे कूद पड़ा और बलराम के पुत्र की गर्दन जा पकड़ी। दाहने हाथ में एक कटार लेकर उसके

कण्ठ को लक्ष्य किया और बोला—"क्या तुम्हें यही तमाशा देखना है ? अच्छा लो, मैं भी कुछ खेल दिखाता हूँ।

बलराम चिल्ला उठा—"ठहरो, ठहरो ! यह क्या करते हो मैं तो हँसी कर रहा था। क्या तुम सोचते हो कि मैं लम्बोदर वासियों को, जो मुझे अतिप्रिय हैं तथा सदैव मित्रों का सा व्यवहार करते हैं, मार डालूँगा ? सैनिको ! अपना-अपना हाथ हटा लो। बैठ जाओ। इस शव को यहाँ से दूर करो—इसी के कारण मित्रों में कलह खड़ा हो रहा है। अच्छा, हम लोग बैठ जायँ और जिन्हें शरबत पीना है शरबत पियें तथा जिन्हें सुरापान करने की इच्छा हो, प्याले ढालें। ऐसा करने से पारस्परिक वैमनस्य निर्मूल हो जायगा।

कुमार ने पुनः इस अवसर से लाभ उठाया। उसने कहा—"बलराम, सुनो। लम्बोदर नगर के लोगो, तुम भी ध्यान दो। ऐ लड़के, शान्ति पूर्वक खड़ा रह जब तक दुबारा इसी तरह की हँसी न की जायगी, तब तक तुझे किसी प्रकार का भय नहीं।"

बलराम साश्चर्य बोला—"हम लोग दूसरों से शर्तें पूरी कराते हैं किन्तु स्वयं एक भी शर्त नहीं करते। फिर भी, हमारी ही सभा में आकर मेरे पुत्र को इस कार्यवाही का जिम्मेवार बनाना कैसी धृष्टता का काम है ! तुम कौन हो ? जो ऐसी उद्दंडता का व्यवहार करते हो ?"

कुमार ने निर्भय होकर उत्तर दिया—"मैं जयनगर नरेश महाराज जयसिंह की पंजाबी संरक्षक मंडली का एक सदस्य हूँ। मेरे स्वर और वस्त्र इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। मानगढ़ की सारी शक्ति तेरे विरुद्ध एक क्षण में संचालित होगी। यदि तू जयनगर की सहायता चाहता है तो हम लोगों के प्रति ऐसा कुव्यवहार न कर।"

कुमार के कड़े शब्दों में पौरुष भरा था। साहस प्रशंसनीय था। नागरिकों को और विशेषतः प्रणवीर के अनुयायियों को बहुत प्रोत्साहन मिला। वे भी चिल्ला उठे—"जयनगर और लम्बोदर नगर अवश्य एक साथ रहेंगे। उन्हें कोई भिन्न नहीं कर सकता। हमारे नगर की जय हो अथवा पराजय, विभव अथवा पराभव, सुख अथवा दुःख कुछ भी हो हम सदैव जयनगर के साथ हैं। जयनगर की जय हो।

बलराम की आँखें चमक उठीं। उसने अपनी भुजाली उठाई। जान पड़ता था कि वह उसे कुमार के वक्षः स्थल में घुसेड़ने को उद्यत है। किन्तु जब उसने चारों ओर नजर दौड़ाई तो ताड़ गया कि मेरे सैनिक भी अब मेरी सहायता नहीं करेंगे। इसका कारण यह था कि उनमें बहुत से जयनगर वासी थे। उन्हें पूर्ण रीति से विदित था कि जयसिंह सदा नगर वासियों को गुप्तरीति से आर्थिक सहायता प्रदान करते रहते हैं। वे महन्त की हत्या के लिए

तय्यार न थे। किन्तु जब वह दुर्घटना हुई तो उनके हृदय में अपने नेता के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। वे ये भी जानते थे कि मानगढ़ाधीश कैसा प्रबल है। उसकी सैन्य शक्ति किसी से छिपी न थी। महन्त की हत्या का समाचार सुन कर मानगढ़ अवश्य आगबबूला होगा। वह बदला लिये बिना एक क्षण भी न बैठेगा। ऐसी अवस्था में जय-सिंह को भी क्रुद्ध करना ठीक नहीं।

ऐसा तर्क-वितर्क प्रत्येक सैनिक मन ही मन कर रहा था। बलराम उन पर दृष्टि पात करते ही समझ गया कि अब सारा काम बिगड़ना चाहता है। अतः वह बोला—"मैं नगरवासियों का कुछ भी अनिष्ट नहीं करना चाहता, वे मेरे मित्र हैं। जब उनकी इच्छा हो तभी वे स्वतंत्रता-पूर्वक शोणमहल से प्रस्थान कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि पंजाबी नवयुवक आज यहाँ ही ठहर कर हम लोगों का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करेंगे तथा अपनी उपस्थिति से मुझे कृतार्थ करेंगे।"

कुमार ने इस सत्कार के लिये धन्यवाद दिया और कहा मुझे दुःख है कि महाराज की आज्ञा के अनुसार मैं इस समय प्रणवीर महाशय के साथ रहने को बाध्य हूँ। एतदर्थ आपका आतिथ्य ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। हाँ, जब मैं आपके यहाँ लौट कर आऊंगा तो निःसन्देह आपका आतिथ्य ग्रहण करूँगा।

प्रणवीर अपने नागरिकों तथा कुमार और आशा-बाला को लेकर शीघ्र ही शोण महल से बाहर हुआ। बलराम अपने लुटेरे सैनिकों के साथ वहीं आमोद प्रमोद करता रहा। अब नागरिक नगर में पहुँच गये। कुमार और आशाबाला को प्रणवीर अपने यहाँ ले गया। उसने आशा को अपने बेटी तोषदा के हवाले किया। आशा ने सोचा कि यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि अब निश्चय ही मेरा पता लग जायगा। अतः प्रातः काल होते ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहिये। कहीं अन्यत्र भागने में कुशल नहीं है। इस लिये रोहिताश्व दुर्ग में चल कर स्वयं मानसिंह की शरण लेना ही अच्छा है। आशा है, शरणागत जान कर वह क्षमा करेंगे।

भोर हुआ। आशा ने एक ग्राम्य स्त्री का भेष बना लिया। कुमार भी एक साधारण ग्राम वासी बना। हंसराज जो तोषदा का भावी पति था उन्हें रोहिताश्वगढ़ का मार्ग बताने चला। अब कुमार ने आशाबाला को बताया कि हेमांगिनी का क्या हुआ। आशा को दुःख तो हुआ पर लाचारी थी।

दो पहर तक वे निरापद चलते रहे। तत्पश्चात पुनः विघ्न उपस्थित होने लगे। दिन का तीसरा पहर हो चुका था। उन लोगों ने देखा कि बलराम के कुछ सैनिक हम लोगों का पीछा कर रहे हैं। परन्तु भाग्यवश इसी समय

क्रूरसिंह की एक सैनिक-टोली से उनकी भेट हो गई। वीर सैनिकों ने लुटेरों को मार भगाया। आशाबाला ने क्रूरसिंह की शरण ली और रक्षा की प्रार्थना की।

हंसराज को लौट जाने की आज्ञा मिली। बिदा होते समय आशाबाला ने उसे तोषदा के लिये मोतियों की एक सुन्दर माला दी।

## [ १४ ]

अब क्रूर ने कुमार से तड़ा-तड़ प्रश्न करना प्रारम्भ किया। बोला तुमने आशाबाला का साथ कैसे दिया? इसकी रक्षा का भार तुम्हें किसने सौंपा?

कुमार सुन्दर—"क्रूरसिंह जी, आपका स्वर अभी इतना कठोर है कि इसे अपमान कहना अनुचित न होगा। तथापि मैं उत्तर देने को बाध्य हूँ यदि मैं मौन धारण कर लूं तो इस महिला पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव होगा। मैं समझता हूँ कि केवल मेरा ही नहीं वरन आपका भी यह प्रधान धर्म है कि इस समय इसकी रक्षा की जाय। जब से इसने पलामूँ से भोजपुर के लिये प्रस्थान किया है तभी से मैं मार्ग में इसके संरक्षक का कार्य करता आ रहा हूँ।"

क्रूर—"ओ-हो! ठीक है। यह जयनगर दुर्ग से निकल भागी। तुम 'पंजाबी दल के सदस्य' हो। अतः महाराज की आज्ञा से आये हो।"

कुमार बड़े असमंजस में पड़ा। क्या करूँ। महाराज की कृतज्ञता कैसी? क्या वह बलराम द्वारा आक्रमण करा कर मेरी जान लेने को उद्यत न थे? पुनः प्रस्थान के समय मुझे प्रण करना पड़ा था कि प्राणपन से मैं आपके आदेशों का पालन करूँगा। मैंने उनका नमक भी खाया है। चाहे जो हो, मैं नमक-हराम नहीं हो सकता।

सोच समझ कर उसने उत्तर दिया—"महाशय! मुझे अफसरों ने जो २ आज्ञा दीं उनका पालन मैंने अब तक पूर्णतः किया है। मैं उनकी आज्ञा का कारण कैसे पूछता।

क्रूर—"इतना ही काफ़ी है। मैं जानता हूं कि महाराज किसी साधारण काम के लिये अपने धनुर्धरों को नहीं भेजते। फिर किसी भगोड़ी स्त्री के घोड़े की लगाम थामने के लिये संरक्षक-दल के सदस्य की नियुक्ति हो, यह समझ से बाहर की बात है। जब वह किसी राजनीति के गहन प्रश्न को हल किया चाहते हैं तभी पंजाबी सैनिकों से काम लेते हैं, अन्यथा नहीं। अब जयसिंह मुँह खोल कर कह नहीं सकते कि कृष्णापुरी की कुमारी अपनी सम्बन्धिनी के साथ उनके यहां नहीं गई थी। उन्होंने स्वयं अपने प्राण-रक्षकों में से एक को उनके साथ भेजा है। अच्छा धन्वी महाशय, अब यह तो बताइये कि आप कहाँ जा रहे थे?"

कुमार—"लम्बोदर नगर, क्योंकि महिलाओं की इच्छा थी कि परलोकवासी महन्त जी की शरण में जायँ।"

क्रूर—"ऐं, परलोकवासी ? क्या लम्बोदर नगर के महन्त ठंठपाल पंचत्व को प्राप्त हो गये ? उनकी बीमारी की कोई खबर राजा साहब को न थी ! वह कैसे अचानक मर गये ?"

कुमार—"श्रीमान् ! उनकी हत्या की गई है। मालूम नहीं कि उनका अग्नि संस्कार भी किया गया था नहीं।"

क्रूर—"हत्या ! हे परमेश्वर, यह क्या ?"

कुमार—"मैंने सारी दुर्घटना अभाग्यवश अपनी आँखों से देखी है। इसके अतिरिक्त अनेक अत्याचार भी किये गये हैं।"

क्रूर—"देखा और बचाने का प्रयत्न नहीं किया ? महल के संरक्षकों को सूचना तक न दी ? क्या तुझे मालूम नहीं कि पूज्य व्यक्ति पर किया गया अत्याचार चुपचाप देख लिया जाय तो दर्शक को भी महापातक लगता है ?"

सुन्दर—"महानुभाव ! बात यह है कि बलराम ने महल पर चढ़ाई की। विद्रोही नागरिकों ने उसकी सहायता की। दुर्ग संरक्षक पराजित हुये। महल लुटेरों के हाथ लगा तभी महन्त जी मारे गये।

क्रूर—'यह सुनकर मुझ पर वज्रपात सा हो रहा है'। लम्बोदर नगर में विद्रोह हुआ। शोणमहल लुट गया। महन्त मारे गये ! बोलो, क्या तुम्हें विद्रोह, आक्रमण तथा हत्या के विषय में पहले से मालूम था ? बोलो ? तुम जय-

सिंह के विश्वस्त व्यक्तियों में से हो। यह तीक्ष्ण तीर उसी ने कलेजे में चुभाया है। सच कहो, नहीं तो तुम्हें जंगली कुत्तों से नुचवा कर मरवा डालूँगा।

कुमार—" मैं इन दुर्घटनाओं के विषय में अधिक नहीं जानता। आप समझते हैं कि इन में मेरा हाथ रहा होगा। किन्तु मैं अपनी जाति के उज्ज्वल नाम की दुहाई देकर कहता हूँ कि उस समय मेरी जो भी इच्छा थी, अगर उस के अनुकूल साधन मिलता तो मैं उनकी एक न चलने देता। परन्तु मैं करता तो क्या करता! वे सैकड़ों की संख्या में थे और मैं अकेला। मेरी जिम्मेवारी भारी थी। किसी प्रकार आशाबाला की रक्षा करनी थी। भाग्यवश मैं उस उद्योग में सफल हुआ।"

क्रूर—" नवयुवक! मैं तुम्हारा विश्वास करता हूं। खेद का विषय है कि जहां महन्त जी बड़े-बड़े राजाओं की भाँति शानदार दावतें दिया करते थे उसी स्थान पर उनका वध किया गया। मारने वाला भी कौन? एक पामर-राक्षस। हत्या-पाप का अवतार! ओह कैसा अनर्थ है। जिस स्थान पर महन्त ने उसे पुत्रवत् पाला था, उसी स्थान पर उस पिता तुल्य वृद्ध के रक्त से वह आज अपने हाथ रंगे। यदि इस अन्याय का प्रतिशोध तत्काल न किया गया तो समझना चाहिये कि संसार से धर्म उठ गया। यह नृशंसता संसार में अपना जोड़ नहीं रखती। इतना कह कर वह

चुप हो गया, और बाघनख युक्त दोनों हाथों को ज़ोर से छाती पर पटका। झेलम के संग संघर्ष होने से कठोर कड़कड़ाहट उत्पन्न हुई। पुनः उसने कमर से तलवार निकाली और दोनों भुजाओं को आकाश की ओर उठाकर जलद-गम्भीर स्वर से प्रतिज्ञा की—"यदि कोई दूसरा व्यक्ति हत्यारे का पीछा न करे; तो भी मैं कुमार क्रूरसिंह शाहदेव त्रिदेवों तथा तेंतीस कोटि देव-देवियों को साक्षी देकर कहता हूँ कि जब तक मैं महन्त ठण्ठपाल के हत्यारे से पूरा बदला न लूं तब तक मै किसी भी अन्य सांसारिक विषय से सम्बन्ध न रखूंगा।

यह भीष्म प्रतिज्ञा कर चुकने के बाद उसका हृदय कुछ हल्का हुआ। दुःख का बोझ कम होने पर उसने कुमार से शोणमहल की घटना का सविस्तार हाल पूछना प्रारम्भ किया।

क्रूर—" बलराम तो पक्का चोर डाकू, हत्यारा तथा पापी है। किन्तु नागरिकों को क्या पड़ी थी जो अपने शासक की हत्या करने गये।"

कुमार ने उस क्रोधान्ध वीर को समझाया कि यद्यपि लम्बोदर नगर के लोग विद्रोह में मूर्खतावश सम्मिलित हो गये थे तथापि उनमें जो उच्च विचार वाले एवं सम्पन्न व्यक्ति थे उनकी सम्मति महन्त की हत्या कराने की कदापि न थी।

क्रूर बार-बार उसी विषय की चर्चा करता था। वह शोणमहल की चढ़ाई और महन्त के महा प्रभाव के विषय में खोद-खोद कर पूछता था। अन्ततः शायद उसे स्मरण हो आया, और उसने पूछा—हेमाङ्गिणी कहां है? वह आशा के साथ क्यों नहीं है? तिरस्कार सूचक शब्दों में उसने पुनः कहा—उसके आने से न कुछ लाभ और न जाने से कोई हानि। कृष्णपुरी के विख्यात वंश को कलंक का टीका लग गया। आशा के विषय में मैं जानता हूं। वह विनम्र स्वभाव वाली सुशीला युवती है। उसने मानगढ़ से जयनगर भाग कर अपराध तो अवश्य किया है तथापि इसका प्रधान कारण मेरी समझ में वही जान पड़ती है।

कुमार ने कहा—सुनने में आया है कि वह बलराम के हाथों में पड़ गई है।

क्रूर—बलराम उसका पाणिग्रहण कर लेगा। जब तक रुपयों की थैलियाँ हाथ न लगें अथवा वे रिक्त न हो जायँ तब तक वह उसे रखेगा। ज्योंही दो में एक हुआ कि वह लातों की मार से उसके प्राण निकाल देगा।

चलते-चलते संध्या हो गई। सहसराम निकट था। क्रूर ने आशाबाला को वहीं छोड़ दिया। गत रात्रि को उसे जितनी यातनायें सहनी पड़ी थीं उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। आज भी प्रायः पच्चीस-तीस मील की योत्रा करनी पड़ी है। राह में भी अनेक विघ्न

उपस्थित होते गये। अतएव वह चिन्ता तथा क्लांति से चूर-चूर हो रही थी। क्रूर ने उसे एक मठ की आचार्या को सौंप दिया।

क्रूर वहाँ बहुत थोड़े समय तक ठहरा। वहाँ मानगढ़ की एक छोटी सेना रहती थी। उसके नायक को आज्ञा मिली कि इस स्त्री के विषय में सावधान रहना। वह स्वयं सब से पहले मानसिंह को यह दुःखद समाचार सुनाना चाहता था कि लम्बोदर नगर में विद्रोह मच गया और महन्त बाबा मारे गए। अपने तथा अपने अनुयायियोंके लिए दूसरे घोड़े लिए। वे वायु वेग से रोहिताश्वगढ़ की ओर चले। क्रूर की आज्ञा से कुमार भी साथ-साथ चला।

अभी वह रोहिताश्वगढ़ पहुँचा भी न था कि मार्ग में एक आश्चर्यजनक समाचार मिला कि स्वयं महाराज जय-सिंह राजा मानसिंह से मिलने के लिए रोहिताश्वगढ़ आ रहे हैं। इसका कारण बताया जाता था कि साक्षातकार और विचार परिवर्तन से परस्पर भेद-भाव दूर हो जायँगे। महाराज ने थोड़े से पञ्जाबी धन्वियों को साथ ले लिया था। गौरगढ़ के बाबू साहब, दौलतराम, अल्लू ठाकुर और पण्डित हृषीकेश जी भी साथ थे। यह सब हृषीकेशजी के पांडित्य का परिणाम था। उन्होंने महाराज को विश्वास दिलाया था कि ऐसे अवसर पर साक्षात्कार करने से सफलता अवश्यम्भावी है।

## [ १५ ]

अब मानसिंह असमंजस में पड़ गया। वह चंचल और आतुर स्वभाव का व्यक्ति था। वह शीघ्र उत्तेजित होकर बिना सोचे-विचारे भी कार्य कर डालता था। महाराज जयसिंह उसके अधिपति होकर भी स्वयं ही उस से मिलने आ रहे थे। साथ-ही वह उसे 'राजकेशरी' की उपाधि से विभूषित करने वाले थे।

पर मानसिंह ने अपने राजसी मुकुट तथा वस्त्रादि धारण किये। राज्य के प्रधान-प्रधान अधिकारी और रईस घोड़ों पर सवार होकर महाराज जयसिंह का स्वागत करने चले। महाराज जयसिंह के अनुगामियों की संख्या कम थी। उन्होंने एक सूती लबादा पहना हुआ था। सिर की पगड़ी पर अनेक देवी-देवताओं के चित्र अंकित थे। मानसिंह अपने विशाल घोड़े से उछल पड़ा। उसने एक घुटना टेक कर जयसिंह के घोड़े की लगाम थाम ली। महाराज अपने घोड़े से नीचे उतरे। राजा-महाराजा का

मिलन हुआ। क्या ही सुन्दर दृश्य था। किन्तु पारस्परिक प्रेम-भक्ति केवल दिखावटी थी। उनके किसी भी काम में सत्य का समावेश न था।

जयसिंह ने ताड़ लिया कि यहां मानसिंह को प्रसन्न रखने में ही मंगल है अतः वह राजा से खूब घुल-मिल कर बातें करने लगे मानो दोनों में कभी मत भेद हुआ ही नहीं।

इतनी सावधानी से काम लेने पर भी जयसिंह का चित्त अशांत था। उनके व्यवहार से असंतुष्ट होकर अनेक वीर जयनगर छोड़ कर मानगढ़ चले आये थे यहां उन्हें अच्छे ओहदे मिले थे और दरबार में उनका बहुत रोब-दाब था।

महाराज से जहां तक बना उन्होंने बाह्य प्रेम तथा सम्मान से काम लेने का प्रयत्न किया। उन्हें प्रति-क्षण सतर्क रहना पड़ता था। मानसिंह की अवस्था भी कम शोचनीय न थी। वह छोटी-छोटी बातों पर भी उबल पड़ता था। महाराज जयसिंह की मौजूदगी में उसने अपने स्वभाव को बड़े यत्न पूर्वक वश में रक्खा अतएव उसे भी कम कष्ट न था।

जयसिंह ने रोहिताश्व दुर्ग का एक प्रान्त अपने लिये पसन्द किया। अतः मानसिंह के शयनागार के प्रधान भृत्य ने आकर महाराज को रास्ता दिखाया। महाराज

विश्राम भवन के द्वार पर पहुँचे। वहां मानगढ़ी सैनिकों की एक टोली मौजूद थी जिसे महाराज के निवास-स्थान का संरक्षण सौंपा गया था।

दूसरे दिन प्रातः काल मान गढ़ की सारी सैन्य शक्ति एकत्रित की गई सैनिकों की संख्या इतनी थी और वे इतने नियंत्रित थे कि महाराज के सामने उनका संचालन करते समय मानसिंह को गर्व की अनुभूति हुई पर महाराज जयसिंह के हृदय की अवस्था बिल्कुल दूसरी ही थी। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि मानगढ़ की सैन्य शक्ति मेरी ही मूर्खता से इतनी बढ़ी है। मैंने जय नगर में जिन-जिन को कष्ट दिया, वेही आज मानगढ़ के स्तम्भ स्वरूप दीख पड़ते हैं। मैंने बड़ी भूल की। पर अब पछताने से क्या होता है। महाराज जयसिंह विचित्र पुरुष थे। उनकी कूटनीति इस समय भी काम कर रही थी। ऊपर से तो महाराज उदासीन दीख पड़ते थे मानों इन बातों की उन्हें खबर ही न हो। किंतु भीतर-ही-भीतर उपायों की उधेड़ बुन में लगे हुए थे। किस प्रकार से असंतुष्ट सैनिक पुनः मेरे पक्ष में आ सकते हैं? मान-गढ़ की शक्ति को क्षीण करने के लिये क्या उपाय किया जाय? अच्छा! इन लोगों में जो प्रधान-प्रधान वीर हैं उनके पास अल्लू आदि को भेजा जाय। तो विश्वास है कि फल अच्छा ही निकलेगा।

महाराज स्वयं बड़ी-ही कार्य-क्षमता रखते थे। किसी कठिनाई के आगे आप जल्दी से सिर नहीं झुकाते थे। इस अवसर को भी उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। जब भी अवसर मिलता तब ही आप राजा के प्रधान अधिकारियों एवं सलाहकारों को फुसलाते थे। उन्हें बार-बार पुरस्कार देते थे और अत्यंत परिचित व्यक्ति की नाईं हिल-मिल कर बातें करते थे।

यदि वे संकोच करते तो कहते आप लोगों को मैं पुरस्कार इस लिए नहीं देता कि आप लोग अपने प्रिय-राजा की सेवा छोड़ दें, बल्कि इस लिए कि आप लोग जय नगर और मान गढ़ के बीच मैत्री अक्षुण्ण रखने में सहायक हों। इससे दोनों ही राज्यों की भलाई होगी और उनके शासक एवं शासित वर्ग सुखी रहेंगे।

## [ १६ ]

आखेट से लौट आने पर महाराज के लिए रोहितश्वा-गढ़ में एक विशाल भोज की तय्यारी की गई। चारों ओर चहल पहल थी।

भोजन के पदार्थ क़रीने के साथ सजा कर रक्खे गये थे। सोना-चाँदी के थालों से चौकियाँ लदी हुई थीं। उनमें ऊपर-ऊपर तक नाना प्रकार के सुस्वादु तथा सुगंधित भोज्य पदार्थ भरे थे। चारों ओर सुन्दर-सुन्दर आसन बिछे हुये थे। अन्तिम सिरे पर दो उच्चासन लगे थे। एक पर मानसिंह बैठ गया। दूसरा आसन उससे भी ऊँचा था। वह जयसिंह के लिये था जयसिंह उस पर आरूढ़ थे। उसके पीछे गर्दन नगर का राज कुमार खड़ा था जो दरबार का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार था। दूसरी ओर बलइ मिश्र थे यह दरबार में विदूषक का कार्य करते थे। मानसिंह को इनके बिना एक क्षण कल नहीं पड़ती थी। वह जहाँ जाता था इन्हें साथ ले जाता था।

राजदर्बार के दो सदस्य मृगया में देर हो जाने से अब प्रविष्ट हुए। दोनों नरेशों को प्रणाम करके वे चुप-चाप रिक्त आसनों पर बैठ गए।

राजा—"क्यों अमर कान्त जी ! आपकी मृगया आज या तो बहुत अच्छी रही होगी या बहुत बुरी नहीं तो इतनी दूर निकल जाने की तथा देर करके आने का क्या कारण है ? देवनाथ ! तुम उदास दीख पड़ते हो। क्या अमरकांत ने बाजी मार ली ? तुम तो दार्शनिक हो भले या बुरे भाग्य पर पश्चात्ताप करना तुम्हारे योग्य नहीं। आप इतने अन्यमनस्क और उदास क्यों हैं ? अमरकांत भी कम उदास नहीं जान पड़ते। क्या आज आपके हाथ कुछ भी न लगा ? या आपके बाज खो गये ?

देवनाथ—'पृथ्वी नाथ ! हम लोग जंगल से लौटे आ रहे थे कि श्रीमान् क्रूर सिंह जी से भेंट हुई।"

राजा—'यह कैसे ? क्या वह दुनवार परगने से इतनी जल्दी लौट आये ? कुशल तो है ?'

अमरकांत—"स्वयं क्रूर जी श्रीमान् की सेवा में अभी उपस्थित होंगे। वह स्वयं सारा वृत्तांत कह सुनायँगे, हम लोगों को तो अधूरी खबर मिली है।"

राजा—"क्रूर जी कहाँ हैं ?'

अमरकांत—"वह पोशाक बदल रहे हैं उनके आने में विलम्ब नहीं है।"

कोई आदमी जाकर बोले कि क्रूर जी मेरे निकट सीधे चले आवें। वह भोजपुर परगने के सीमा-प्रान्त से आरहे हैं। हम लोग उधर किसी प्रकार का गुप्त संसर्ग नहीं रखते जो कुछ समाचार हो उसे सारा संसार सुने तो भी कोई हानि नहीं है।

क्रूरजी का प्रवेश हुआ। मानसिंह ने पूछा—आप क्या सम्वाद लेकर आये हैं? आपका आगमन सुनकर खाना पीना तक नहीं किया। आशा है कि सुसम्वाद सुनाकर आप हम लोगों को पुनः प्रसन्न करेंगे।

क्रूर ने दुखित चित्त से कहा—"प्रभो! मैं एक असामान्य समाचार लेकर आया हूं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि मन्त्रिमण्डल की एक असाधारण बैठक अति शीघ्र की जाय जहाँ मैं वह समाचार सुनाऊँ। वह समाचार इस भोजगृह के सर्वथा अनुपयुक्त है।

राजा—" अजी! मतलब की क्यों नहीं कहते? इधर-उधर की बातें सुनना नहीं चाहता। मैं तो ताड़ गया हूं कि लम्बोदर की प्रजा ने पुनः विद्रोह खड़ा किया है।

क्रूरजी ने और भी गम्भीरता धारण कर ली और कहा—प्रभो! आपका अनुमान ठीक है।

राजा—" देखो। मैं कैसे समझ गया? जो क्रूरजी कहना चाहते थे उसे मैं तुरन्त परख गया। नागरिकों को विवेक से कुछ सम्बन्ध नहीं। वे अस्त्र-शस्त्र उठा रहे हैं

हमारे सौभाग्य से महाराज-अधिराज हम लोगों के मध्य वर्तमान हैं। अब आप से उचित परामर्श मिल सकेगा कि इन विद्रोहियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये। ऐसा कहते हुए उसने महाराज की ओर सिर झुकाया, किन्तु उसकी आँखों से अंगार बरस रहे थे। "क्या और भी कुछ कहना है ? शीघ्र बोलिये ! यह भी बताइले कि आप ऐसा सम्वाद सुनकर लौट क्यों आये ? महँत की सहायता करने क्यों नहीं गए ?"

क्रूर—"महाराज आगे मुझसे कुछ भी कहते नहीं बनेगा। मैं बड़ी कठिनाई से हृदय थाम कर आया हूँ। आप भी सुनकर दुःख-सागर में डूब जायँगे। मेरी सहायता क्या, सारे सँसार के वीर भी उनकी रक्षा नहीं कर सकते थे। बलराम ने नगर वासियों की सहायता से शोण महल पर अधिकार जमा लिया है और पुण्य स्मृति महँत जी को उनके ही सभा भवन में मार डाला।

राजा सुन कर अवसन्न रह गया। फिर गम्भीर तथा धीमी आवाज में बोला, किन्तु उसका प्रकम्पित स्वर उस विस्तृत भवन के कोने-कोने में गूँज गया। उसने पूछा—"मार डाला ? नहीं ! यह अफवाह है। ऐसा होना सम्भव ही नहीं है।

क्रूर—"हाय ! मुझे यह खबर ऐसे व्यक्ति से मिली है जो वहां उस समय उपस्थित था। वह साधारण

पुरुष नहीं। स्वयं जय नगर के महाराज के यहां जो पञ्जाबी धन्वी-दल है उसके एक सदस्य ने मुझे यह सूचना दी है। उसकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती। जिस समय बलराम की आज्ञा से महन्त जी का बध किया जा रहा था, उस समय वह उसी भवन में उपस्थित था।"

"और वही हत्या करा रहा था ?" ऐसा कहते हुये मानसिंह दाँत-पीसता, पैर-पटकता, उठ खड़ा हुआ। वह क्रोध से काँपता हुआ बोला—"सज्जनो ! इस भवन के सारे द्वार अति शीघ्र बन्द कर दीजिये। खिड़कियाँ भी बन्द कर दी जायँ और कोई आगंतुक अपनी जगह से न उठे। कोई उठने का प्रयत्न करे तो उसका सिर उतार लिया जाय। सभासदो ! आप सभी तलवारें खींच कर तय्यार हो जायें।" आज्ञा समाप्त होते-होते देखा गया कि स्वयं मानसिंह का हाथ धीरे-धीरे तलवार की मूठ पर जा रहा है और दृष्टि महाराज पर लगी हुई है। किन्तु महाराज बिल्कुल निर्भय होकर बैठे रहे। उनके मुँह से केवल इतना ही निकला "प्रिय बंधु ! इन बुरे समाचारों से आपकी बुद्धि चकरा गई है।

मान—"कभी नहीं ! इन समाचारों ने वायु की नाई भस्माच्छन्न अग्नि को प्रकट प्रदीप्त किया है। अब तक

मैं बहुत सहता आया परन्तु आपके आचारण नहीं सुधरे । मैं उचित स्थान तथा अनुकूल समय की खोज में था । भगवान ने आज वह भी दे दिया । आपने भाई की हत्या की । पिता के विरुद्ध विद्रोह किया प्रजा के साथ चलते रहे । मित्रों से विश्वास घात करते रहे अब अपने राज-पद का भी तिरस्कार किया । आपको भद्र पुरुष मानना घोर पाप है । अब आप मेरी मुट्ठी में आ गये परमात्मा का धन्यवाद है ।"

मानसिंह का हाथ अब तक तलवार की मूठ पर ही था । परन्तु उसने तलवार म्यान से बाहर नहीं निकाली । इसका प्रधान कारण जय सिंह का मौन धारण करना था । नहीं तो मानसिंह का क्रोधानल उन्हें भस्मीभूत किये बिना न रहता सारे भवन में खल-बली मच गई । सभी दरवाजे तथा खिड़कियाँ बन्द कर दी गईं । जयनगर के रईस जिनकी संख्या अत्यल्प थी, उठ खड़े हुये और महाराज की रक्षा करने को तय्यार हो गये । इसी समय दौलत राय की ऊँची आवाज सुन पड़ी । उसने राजा मान सिंह को संबोधित करके कहा—राजा साहब क्या आप भूल गये कि आप जय नगर के अधीनस्थ राजा हैं । यह याद रहे कि हम लोग आपके अतिथि हैं । हम लोगों को महाराज मेदिनी पति के वंशज होने का गौरव है । यदि हमारे महाराज पर किसी ने एक अंगुली

भी उठाई तो हम लोग जान पर खेल जायँगे। गौरगढ़ाधीश, साहस करिये, जयनगर के बीरो, आपने आजन्म महाराज का नमक खाया है। अतः इस अवसर पर यदि आप कर्तव्य पालन न करेंगे तो नरक में भी स्थान न मिलेगा। आप लोग मेरे निकट आजायँ। मैं जैसा करूँ वैसा ही आप भी करिये।

ऐसे ही अवसरों पर राजाओं की बुद्धि का परिचय मिलता है क्योंकि ऐसे अवसर भर झट-पट निश्चय करना पड़ता है। उस सभा में कुछ ऐसे भी स्वतंत्र रईस सरदार तथा वीर थे जिन्होंने सोचा कि राजा मानसिंह की शक्ति इस स्थान पर अपार है। यदि युद्ध छिड़ गया तो जयनगर के वीरों का व्यर्थ ही विनाश होगा। अतः वे शीघ्र ही दौलत राय से जा मिले। आगे-आगे दौलतराय बढ़े और उनके पीछे ये सभी चले। वे उसी ओर बढ़ रहे थे जहाँ दोनों प्रतिद्वंदी सिंह वर्तमान थे।

इस उदार दल में सरदार कपूरसिंह जी प्रमुख थे। उनकी-सी अवस्था का अन्य व्यक्ति इतनी स्फूर्ति नहीं रख सकता था। मानगढ़ के सरदारों तथा रईसों में आपके प्रति श्रद्धा थी, इस लिये उन लोगों ने अपने राजा की आज्ञा के विरुद्ध आपको आगे बढ़ने से नहीं रोका। आप दोनों नरेशों के बीच में जा डटे।

कपूरसिंह—"मैंने महाराज के पितामह तथा पिता के लिये शस्त्र ग्रहण किये थे। आपके साथ ही मेरे भी प्राण जायेंगे। वृद्ध सिंह के मुंह से केवल इतना ही निकला।

जयनगर के गण्यमान्य वीर भी यत्र-तत्र मँडराने लगे।

मानसिंह का हाथ अब तक तलवार की मूठ पर ही था। जान पड़ता था कि अब वह हत्या कांड का प्रारम्भ करेगा, संकेत पाते ही सारी सभा रणक्षेत्र में परिणत हो जाती। जयनगर के दल का विनाश अवश्यभावी था। इस अवस्था पर विचार करके क्रूरसिंह आगे बढ़ा और सच्चे सिंह की नाईं गर्जन करते हुए बोला—"राजा मानसिंह! आप मेरे स्वामी हैं, इस समय मेरी धृष्टता के लिये क्षमा करेंगे। क्या आप जानते नहीं कि आप क्या करने जा रहे हैं? यह आप का घर है। आप महाराज के अधीनस्थ राजा हैं। महाराज आप के आतिथि हैं। अपने प्रभु एवं आतिथि का रक्तपात आप अपने घर में न करिये, अपने कुल की मर्यादा रखना चाहते हैं तो हत्या का प्रतिशोध हत्या द्वारा न लें।

मान—"क्रूर! मेरे काम में बाधा मत दो। मुझे बदला लेने दो। मैं किसी की बात न मानूंगा।

क्रूर ने पूर्ण साहस के साथ उत्तर दिया—"श्रीमान्, क्रोध का कारण कितना ही उचित क्यों न हो, मगर मैं यही प्रार्थना करूँगा कि आप आपे से बाहर न हों।

जयनगर के वीरो ! आप से मेरी यही प्रार्थना है कि आप सोच-समझ कर काम करें। बल प्रयोग से कुछ न होगा। आपकी ऐसी चेष्टा होनी चाहिए कि रक्तपात न होने पाये।"

जयसिंह ने ऐसे अवसर पर धैर्य न छोड़ा। वह बड़ी शाँति के साथ बोले—"क्रूर जी, आप बहुत ठीक कह रहे हैं। प्रिय गौर गढ़ाधीश ! दयालु दौलतराम ! कर्मवीर कपूरसिंह ! आप लोग इतनी जल्दी क्रुद्ध न हो जायें। ऐसा करने से अनिष्ट हो जायगा, मेरे प्रिय बन्धु राजा साहब ने जब से अपने इष्ट-मित्र की हत्या का समाचार सुना है तब से इनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी है। हम लोगों का हृदय भी तो रो रहा है। पर किया क्या जाय उस दुःखद घटना को सुनकर हम लोगों के बीच में बहुत दिनों से अकारण ही मनोमालिन्य चला आ रहा है। वर्तमान घटना ने राजा साहब का सन्देह और भी पुष्ट कर दिया।"

"मैं राजासाहब का राजा हूं तथा उनका अतिथि बन कर यहां आया हूं। यदि इनकी हमारी हत्या करने की ही इच्छा हो तो कोई हानि नहीं। वह अपने दिल का अरमान मिटा लें। आप लोग भी यदि अपनी जान दे दें तो मेरे भाग्य में जो बदा होगा उसे नहीं बदला जा सकता उसे सहना ही पड़ेगा। परन्तु क्रोध के आवेग में आकर कुछ करना उचित नहीं। उसका परिणाम बहुत बुरा होगा कपूरसिंह जी आप पीछे हटकर खड़े हो जायँ।

कर्पूरसिंह ने कहा—"जो आज्ञा।"

अब तक राजा मानसिंह चुपचाप खड़े थे। अब वे भी बोले—"क्रूर! तुम्हारा विचार निस्सन्देह उत्तम है। मैं क्रोध के आवेग में महाराजे से बदला लेना चाहता था। परन्तु अपनी कुल मर्यादा की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि अब सभी बातों पर उचित रीति से विचार किया जाय। मैं अब इस रीति से कार्य करूँगा कि सारे भारतवर्ष में मेरी न्याय प्रियता की धाक जम जायगी। जयनगर के सज्जनों आप अपने अस्त्र-शस्त्र मेरे कर्मचारियों को समर्पत कर दीजिये। आपके स्वामी ने सन्धि के नियमों का जान-बूझ कर उल्लंघन किया है। अतः उन्हें अब अपने पदाधिकार से लाभ उठाने का कोई हक़ नहीं है। आप सभी सम्मानास्पद हैं। मुझे आपके सम्मान का पूरा ध्यान है। महाराज ने अपने प्रशस्त वंश को कलंकित कर दिया है, पर मैं उनकी तलवार नहीं चाहता।"

दौलतराम—"जब तक आप विश्वास न दिलावें कि महाराज के प्राण संकट में नहीं हैं तब तक हम लोग न अपना हथियार छोड़ेंगे और न भवन के बाहर जायँगे।"

कपूरसिंह—"जब तक स्वयँ महाराज अथवा उनके सेनापति की आज्ञा न हो तब तक पंजाबी संरक्षकों में से कोई व्यक्ति हथियार न रक्खेगा।

जयसिंह—"दौलतराम, आप वीर हैं। कर्पूरसिंह, आपके लिए मैं किन शब्दों का प्रयोग करूँ। इस समय आपकी चेष्टा से मेरी रक्षा के बदले अनिष्ट हो रहा है। मेरे पक्ष में सत्य है। मुझे सत्य के बल पर पूर्ण विश्वास है। आप लोग तलवार रख दें। मानगढ़ी वीर वचन के पक्के हैं। वे हम लोगों को शस्त्रहीन करके विश्वासघात कदापि नहीं कर सकते। मेरी धारणा है कि वे हर हालत में मेरी तथा आप लोगों की रक्षा करेंगे। तलवार छोड़ दीजिये। मैं स्वयं यह आज्ञा देता हूँ।"

इस अवसर पर जयसिंह ने निर्णय करने में शीघ्रता से काम लिया। उनकी बुद्धि प्रशंसनीय थी क्योंकि कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान ऐसे समय पर बहुत ही कम लोगों को होता है। यदि तत्कालिक निश्चय से कार्य नहीं लिया जाता तो बचने का अन्य कोई उपाय न था। यदि एक बार शस्त्र-संचालन का श्रीगणेश हो जाता तो जयसिंह अपने घोड़े, विश्वासी तथा वीर साथियों के साथ सदा के लिये धराशायी हो जाते।

कर्पूरसिंह जी ने महाराज की आज्ञा पाते ही क्रूर के समक्ष अपनी तलवार फेंक दी और कहा—"लीजिये भगवान् आप को सुबुद्धि दें। इस कार्य से मेरी कुछ भी मान-हानि नहीं हुई, क्योंकि शक्ति की उचित परीक्षा नहीं हुई।"

मानसिंह बोले—"सज्जनों ! ठहर जाईये, तलवार देने की जरूरत नहीं। आप जब प्रतिज्ञा कर चुके कि उसका व्यवहार नहीं किया जायगा तो मुझे और अधिक कुछ नहीं चाहिये। जयसिंह जब तक महन्त की हत्या तथा लंबोदर नगर के विद्रोह के सम्बन्ध में अपने को निर्दोष नहीं प्रमाणित करेंगे तब तक आप मेरे बन्दी रहेंगे।" अब इन्हें हिरण्याक्ष महल में ले जाओ। यह महल रोहिताश्व का एक खँड था जहाँ राजनैतिक बन्दी रक्खे जाते थे।

महाराज अपने आदमियों में से जिन छः आदमियों को चाहें उन्हें चुन लें, वे उनके साथ रहेंगे। "कपूरसिंहजी आपका संरक्षक मंडल क़िले से बाहर चला जाय। उसके रहने का उचित प्रबन्ध कर दिया जायगा। सभी पेचदार पुल उठा लिये जायँ। नगर के फाटक बन्द रहें। उसके मुख्य प्रवेश-मार्ग पर एकहरे स्थान पर तिहरा पहरा बैठा दिया जाय।" इतना कह कर मानसिंह उठा और साक्षात् काल की नाईं, महाराज पर दृष्टि डालकर भवन से बाहर निकल गया।

महाराज ने चारों ओर गौरवपूर्ण-नेत्रों से देखा और अंत में कहा—"महानुभावो ! मित्र की मृत्यु सुनकर आपके राजा साहब विक्षिप्त हो गए हैं। मेरा उनसे क्या सम्बन्ध है आपको भली भाँति विदित है आप स्वयं वीर हैं अतः आपका कर्तव्य इस समय राजा साहब के विद्रोहात्मक विचारों को मानना नहीं प्रत्युत उन्हे शाँत करना है।

इसी समय नगर की गलियों में नगाड़ों का निनाद सुन पड़ा जो सैन्य एकत्र करने का संकेत था। क्रूरसिंह मानगढ़ का प्रधान सेनापति था। वह बोला—"हम लोग मानगढ़ की प्रजा हैं। अतः उसके प्रति हमारे भी कुछ कर्तव्य हैं। किन्तु हम लोग सदा ऐसी ही चेष्टा करेंगे कि श्रीमान तथा राजासाहब के बीच में फिर मैत्री स्थापित हो जाय। हम लोग इसके लिए कुछ उठा न रक्खेंगे परन्तु इस बीच में राजा साहब की आज्ञा मानना भी जरूरी है। आप राजासाहब को कहते हुए सुन ही चुके हैं। आप केवल छः आदमी अपने साथ रख सकते हैं। अब आप जिन्हें चाहें चुन लें।"

महाराज ने चारों ओर देखा और एक क्षण विचार करने के उपरांत कहा—"अच्छा मैं चाहता हूं कि अल्लू-ठाकुर, कुंवर रणधीरसिंह· त्रिलोचन, तथा ऋषीकेश जी मेरे साथ रहें। दो आदमी और—तो त्रिलोचन के दोनों सेवक त्र्यम्बक तथा पद्मनाभ रहें।"

क्रूर— "श्रीमान् की जैसी इच्छा!"

*　　*　　*

हिरण्याक्ष महल में बन्द, जयसिंह के दिन दुःख से व्यतीत होने लगे। उन्होंने प्रण कर लिया कि ऋषीकेश को प्राण दण्ड देना चाहिये क्योंकि उसी ने धोखा दिया, ज्योतिषी जी उनके सामने बुलाये गये। महाराज ने उन्हें

खूब बुरा भला कहा बोले-तुम पांडित्य का केवल ढोंग रचते हो। कुमार-सुन्दर का कार्य असफल हुआ। मेरे प्राण सङ्कट में हैं और यह सब तुम्हारी सलाह का फल है।

यह सुनकर अति शान्तिभाव से ऋषीकेष बोले—महाराज चिन्ता मत करिये परिणाम अच्छा ही होगा।

महाराज ने पूछा—क्या तुम्हारी विद्या यह बताने में भी समर्थ है कि तुम्हारी मृत्यु कब होगी?

ज्योतिषी ने कौशल के साथ उत्तर दिया—हां प्रभो! आपकी मृत्यु के ठीक चौबीस घन्टे पूर्व।

यह सुनकर महाराज ने उसे छोड़ दिया और जाने की आज्ञा दी।

दूसरे दिन जयसिंह के निकट राजा मानसिंह का एक आदमी आया। उसने कहा कि महाराज! राजा साहब कुछ शर्तें पेश करना चाहते हैं। एक शर्त यह है कि लम्बोदर नगर के विद्रोहियों का दमन करने में आप हमें सहायता दें—दूसरी शर्त यह है कि गौरगढ़ के "बाबू साहब" के साथ कृष्णपुरी की आशाबाला का विवाह कराने में आप अनुमति दें। इस मनुष्य ने महाराज को यह भी सूचना दी कि हेमाँगिनी का विवाह बलराम से हो गया।

इधर महाराज दुर्ग में राजबन्दी बने पड़े थे। उधर उनका नापित-मन्त्री अल्लू चारों ओर लोगों को मिला

रहा था। उसके प्रबन्ध से श्रीमान् कर्पूरसिंह की कुमार-सुन्दर से भेंट हो गई। कुमार ने साफ़-साफ़ कह सुनाया कि मैंने यदि महाराज की आज्ञा के विरूद्ध कोई कार्य किया भी तो लाचार होकर। किंतु—मैं अपना पद-त्याग करना चाहता हूँ। खैर, मैं मानसिंह के निकट एक भी ऐसी बात न कहूँगा जिसके कारण महाराज को क्षति पहुँचे।

आशाबाला भी रोहिताश्व आ गई। वह एक मठ में रक्खी गई थी जिसका नाम "चौरासी-आसन" था। किसी को उससे भेंट करने का हुक्म न था। परन्तु कर्पूरसिंह ने क्रूर की सहायता ली और कुमार की उससे मुलाक़ात हो गई। कुमार ने आशा को समझाया कि मानसिंह जब पूछें तो केवल उन्हीं बातों का उल्लेख करना जिन्हें तुम ठीक-ठीक जानती हो।

कर्पूरसिंह तथा क्रूरसिंह ने सुन्दर को जल्दी से भगाया क्योंकि इसी समय दुर्ग का घन्टा बजने लगा और सभी गण्यमान्य कर्मचारी उपर्युक्त मामले की जाँच के लिए जमा होने लगे।

---

पहला घण्टा बजा इसकी आवाज़ सुन कर मानगढ़ के सभी सरदार तथा अधिकारी इकट्ठे हो गए। इन में कुछ जयनगर के वीर भी थे। स्वयम् राजा मानसिंह हिरण्याक्ष महल के विशाल भवन में पहुँचा। उसके पीछे जो अनुयायी थे वे रणक्षेत्र के उपयुक्त अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। महाराज पहले ही से सचेत थे।

राज़ा—"मैं महाराज से एक प्रार्थना करने आया हूं। एक विराट् सभा की आयोजना की गई है। उसमें अनेक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जायगा। वहाँ जो निर्णय होगा उसी के ऊपर जयनगर और मानगढ़ की कुशलता निर्भर है।"

महाराज—"आप की इच्छा है कि मैं सभा में उपस्थित होऊँ। मुझे इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं।"

त्रिपुरारिदत्त मानगढ़ के सभी प्रतिहारियों में प्रधान था। इस समय वह आगे-आगे चला और दोनों भूपाल

पीछे-पीछे। सभी लोग रोहितास्व दुर्ग के विस्तृत भाग में पहुँचे। वह स्थान मानसिंह के सैनिकों तथा योधाओं से परिपूर्ण था। सभी लोग युद्धक्रम से खड़े थे। वहां से चल कर सभा-भवन में प्रविष्ट हुए। वहां एक चन्दुआ टंगा था। जिसके नीचे दो ऊँचे-ऊँचे राज्यासन रक्खे थे। एक दूसरे से दो पग अधिक ऊँचा था। यह महाराज के लिये था। राज्यासन के दोनों ओर कोई बीस सरदार बैठे थे।

राजा मानसिंह ने महाराज के आसन को झुक कर प्रणाम किया। और कहा—प्रिय सरदारो एवं सभासदो!

"आप लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि मेरी रियासतों में अशान्ति फैल रही है। अनेक अधीनस्थ सरदार एवं जागीरदार मेरे विरुद्ध उठ खड़े हुवे हैं। प्रजा ने भी विद्रोह किया है। हाल ही में एक और अनर्थ हो गया। कृष्णपुरी की अधिकारिणी होकर भी कुमारी आशाबाला ने साधारण स्त्री की नाईं अपने कुल को तिरस्कृत किया। वह दोदी हेमांगिनी को भी लेती गई। दोनों एक पराई रियासत की शरण में गईं। कैसे दुख का विषय है। फिर एक भयानक हत्या की गई। इस में मेरे प्रिय बन्धु तथा सहायक महन्त जी काम आये। आप लोगों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि वह लम्बोदरनगर जिसके साथ हाल ही में बहुत रिआयत की गई थी फिर बग़ावत कर रहा है। मुझे खबर लगी है कि इन दुःखदायक घटनाओं

का उत्तरदायित्व केवल दो स्त्रियों की चपलता तथा धनवान नागरिकों का गर्व ही नहीं, बल्कि किसी वाह्य शक्ति का गुप्त षडयन्त्र भी है। मेरे एक पराक्रमी पड़ोसी की कृपा है। अनेक उपकारों के बदले यदि उस पड़ोसी से मानगढ़ को कुछ भी पुरस्कार की आशा थी तो केवल सच्ची मैत्री की। (कहते-कहते वह दाँत पीसते हुए मारे क्रोध के पैर पटकने लगा) ईश्वर की कृपा से साधन मेरे हाथों में है। यदि उपर्युक्त बातें प्रमाणित हो जायँ तो ऐसा प्रबन्ध कर दिया जायगा जिससे अनर्थ-स्रोत का उद्गम ही बन्द हो जाय।'

अब महाराज की बारी आई। उन्होंने सभा को सहज भावसे सम्बोधित करके कहा—

" जयनगर तथा मानगढ़ के वीरो!

आप लोग बड़े-बड़े संघों के प्रतिष्ठित सदस्य हैं, आपके जीवन का ध्येय दुर्बलों को बचाना और दुष्टों का दमन करना है। अत्याचार का अन्त करना आपका दृढ़ व्रत है। यद्यपि मैं राजा हूँ तथापि मुझे अभियुक्त की नाईं अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनी है। इस कार्य के निमित्त मुझे आप सदृश वीरों तथा सज्जनों की अपेक्षा दूसरा कौन न्यायाधीश मिल सकता है।"

"सज्जनो! मैं राजा साहब का भी अधिराज हूँ। पर उनसे सदैव सहायक की भाँति बर्ताव करता रहा हूँ।

इतने पर भी उनकी मति तथा स्वभाव पर बुरे समय का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने मुझे ही सारे दोषों का भागी समझ लिया। आपका कहना है कि मैंने क्रांतिकारियों को उभाड़ा है, लम्बोदर नगरकी जनताको विद्रोह करने की अनुमति दी है, तथा सभी सार्वजनिक-संस्थाओं से निर्वासित बलराम को अति निकृष्ट हत्या करने को उत्साहित किया है।

दोनों राज्यों के वीरो,

मैं जिस अवस्थामें पड़ा हूँ वह इस विषयका पक्का प्रमाण है। आप लोग स्वयं सोच सकते हैं कि उन दुर्घटनाओं में मेरा कितना हाथ रहा होगा। शोण-मन्दिर में जितने अत्याचार एवं अनर्थ किये गये हैं उनके कर्त्ता मेरा जयघोष भले ही करते रहें परन्तु मैं हृदय पर हाथ रखकर कहता हूँ कि मैंने ऐसा करने की अनुमति उन्हें कदापि नहीं दी। अगर इस पर भी वे मेरा पीछा न छोड़ें तो क्या मैं उनके कार्यों के लिये उत्तरदायी हूँ!

"यदि दो मूर्ख स्त्रियों ने किसी कारण से घर छोड़कर मेरी शरण ली तो इससे कहाँ सिद्ध हुआ कि वे मेरी अनुमति लेकर वहाँ गईं। अबलाओं के हित पर ध्यान रख कर मैंने उन्हें क़ैद करके मानगढ़ भेजना उचित न समझा। बल्कि एक प्रकार से मैंने उन्हें बन्दी बनाया और उन्हें पूज्यपाद बाबा ठंठपाल जी की संरक्षा में रख छोड़ा था।

महाराज का वक्तव्य ज्योंही समाप्त हुआ कि मानसिंह बोल उठा—महाराज! आप जो सफ़ाई दे रहे हैं वह आप की साधुता का कोई काफ़ी प्रमाण नहीं। जाल फैलाया तो दूसरों के लिए गया था किन्तु दुर्भाग्य वश आप आ फँसे। अब जो कुछ होगा, निष्पक्ष जाँच के आधार पर। कृष्णा पुरी की कुमारी आशाबाला को यहां लाया जाय।

कुमारी आशा सभाभवन में प्रविष्ट हुई। मानसिंह उसे देखते ही रूखे स्वर में बोला—कुमारी! तूने तो दो राजाओं को लड़ाने में कोई कमी नहीं रक्खी।

आशाबाला ने कहा—मुझे उस विवाह-सम्बन्ध से घृणा थी जो राजासाहब ने निश्चित किया था। इस आशा में कि जयनगर के महाराज की सहायता प्राप्त होगी, मैं उनकी शरण में चली गइ थी।

मानसिंह—"तो तुम्हें पहले से मालूम था कि जयनगर के महाराज सहायता प्रदान करेंगे'

आशाबाला—"मैंने समझा था। तभी तो उतनी दूर दौड़ने का साहस किया।"

अब मानसिंह ने महाराज की ओर विजय सूचक दृष्टि से देखा। महाराज इसका अर्थ ताड़ गये। उन्होंने बहुत सावधानी से अपने को सँभाला, किंतु चेहरा पहले की अपेक्षा कुछ फीका पड़ गया था।

कुछ देर के बाद कुमारी संभलकर फिर बोली—"किन्तु मेरे प्रति महाराज जयसिंह का कैसा विचार है इसका सारा ज्ञान मुझे अपनी दीदी श्रीमती हेमांगिनी से प्राप्त हुआ था।"

इसके बाद आशाबाला ने पिंडारियों आदि की बात सुनाई। सभाभवन में सन्नाटा छाया हुआ था। कुमारी ने उस समय की घटना से प्रारम्भ किया जब उसने हेमांगिनी के साथ मानगढ़ की रियासत छोड़ी थी। धीरे-धीरे शोण-महल की विपत्ति का वर्णन भी समाप्त हुआ। अन्त में उसने यह कहकर कि किस प्रकार उसने अपने को श्रीक्रूर-सिंह की शरण में समर्पित किया—इतने पर भी मानसिंह का मन नहीं भरा। उसने पूछा—यदि महाराज जयसिंह ने तुझे नहीं बुलाया तो तुझे अपने यहां क्यों रक्खा। मैं महाराज के विषय में कुछ और जानना चाहता हूँ।

जयसिंह—"स्वयं मैंने इन्हें नहीं बुलाया उनकी दशा पर मुझे दया आई। मैंने एकांत में उनसे भेंट की। परन्तु जितनी शीघ्रता से हो सका, मैंने उन्हें महन्त जी के पास भेज दिया। इसका कारण यह था कि वह आप के अनन्य मित्र थे। मैंने इन्हें उनके ऊपर छोड़ दिया था कि वह जैसा उचित समझें वैसा करें।"

आशा०—"हम लोगों का ऐसा सत्कार किया गया कि हम कभी न भूलेंगी। आपने हमारे साथ जैसा वात्सल्य

भाव दिखाया वह यहाँ के व्यवहार से बिल्कुल भिन्न था।"

यह सुन कर मानसिंह आतुरी के साथ बोला:—"कुमारी! अपने भ्रमण की कथा में आपने एक बात छोड़ दी। प्रेम का अध्याय तो हम लोगों ने सुना ही नहीं। महाराज इस अस्थिर-चंचल लड़की के मन-लायक कोई वर क्यों नहीं खोज लिया ऐसा करना अधिक अच्छा होता?"

महाराज को मालूम था कि इसके बाद कैसा अनुपयुक्त प्रस्ताव किया जायगा। परंतु वह-चुपचाप बैठे रहे और मौन द्वारा अपनी अनुमति प्रकट कर दी। अपने भविष्य पर विचार करने से आशाबाला के हृदय में शक्ति तथा साहस का संचार हो आया। वह राजा मानसिंह की गद्दी के सामने जा घुटने टेक कर बैठ गई।

उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—"राजा साहब! आप मानगढ़ सदृश विशाल राज्य के अधीश्वर हैं। मेरे राज्य के स्वामी हैं। मैं आपकी आज्ञा के बिना राज्य के बाहर चली गई। यह अपराध अवश्य है किंतु मैं क्षमा चाहती हूँ। आपकी जो इच्छा हो, करिये। मैं अपना राज्य दुर्ग, कोष, बल, सभी आपके चरणों में अर्पण करती हूँ आप उदार हैं आपकी उदारता की दुहाई देकर मैं आप से एक भिक्षा माँगती हूँ। मैं अपनी अपार संपत्ति में से केवल उतना ही चाहती हूँ जिसके सहारे किसी मठ में मेरा प्रवेश

हो सके और जीवन के शेष दिन वहाँ ही भगवद्भजन में व्यतीत हो जायँ।"

मानसिंह—"पतितों का उत्थान और पददलितों का सम्मान अवश्य होगा। आशाबाला निराशा को आश्रय देना उचित नहीं है। उठ! तू ने अपने लिये जो निश्चय किया है मैंने उससे कहीं हितकर उपाय सोचा है। मैं न तेरी संपत्ति का अपहरण करूंगा और न तेरा अपमान करूँगा। मैं तेरी संपत्ति और सम्मान—दोनों ही की उन्नति चाहता हूं।"

आशा अब तक घुटनों के बल बैठी थी। वह बोली—"प्रभो! जिसे आप हितकर समझते हैं वह मुझे आपकी अप्रसन्नता से कहीं अधिक भयप्रद प्रतीत होता है। इसका कारण यह है .....।"

राजा—"हा ईश्वर! क्या मेरी इच्छा के अनुसार एक भी कार्य न होगा। मेरी आज्ञा का पद-पद पर उल्लंघन किया जायगा! जब अवकाश मिलेगा तब तेरी अवस्था पर विचार किया जायगा। मैं ऐसा प्रबंध करूंगा कि या तो तू उसके अनुसार काम करेगी अथवा तुझे अपने किये का फल भोगना पड़ेगा।"

अब कुमार-सुन्दर को बुलाया गया। वह निधड़क महाराज के सामने आ पहुँचा। न उसमें संकोच-भाव था और न अनुचित धृष्टता थी। उसका रंग, मुखाकृति, और

साज-बाज सभी एक दूसरे की स्पर्द्धा करते थे। राजा मानसिंह की आज्ञा तथा महाराज की अनुमति से उसने अपनी कहानी प्रारम्भ की। उसने कृष्णापुरी की महिलाओं के साथ जयनगर से लंबोदर नगर के अड़ोस-पड़ोस तक की यात्रा का पूरा विवरण कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि महाराज जयसिंहने मुझे आज्ञा दी थी कि—इन देवियों को तुम महंत जी के यहाँ निरापद पहुंचा देना।

महाराज—"तुमने मेरी आज्ञा का ठीक-ठाक पालन किया ?"

कुमार—"हाँ महाराज !"

इसके बाद कुमार ने मानसिंह की आज्ञा से वह पर्चा पेश किया जो उसे मार्गानुक्रमणिका स्वरूप महाराज से प्राप्त हुआ था।

राजा—"क्या तूने इन आदेशों का अक्षरशः पालन किया ?"

कुमार—"नहीं प्रभो ! उनके अनुसार मुझे संगल ग्राम के निकट शोणभद्र पार करनी थी, किंतु मैंने उस नदी के बायें किनारे का अनुसरण किया क्योंकि वह मार्ग सीधा और निरापद जान पड़ा।"

राजा—"ऐसा परिवर्तन क्यों किया ?"

कुमार—"क्योंकि मुझे अपने पथ-प्रदर्शक की सचाई के सम्बन्ध में संदेह हो गया था।"

राजा—"अब मुझे जो प्रश्न करने हैं उन्हें सावधानी से सुन।"

भवन में पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी। राजा ने कुमार से फिर पूछा—"तुम्हारा मार्ग-प्रदर्शक कौन था, उसे किसने नियुक्त किया था ? उसके विषय में तुम्हें संदेह क्यों हुआ ?"

कुमार ने कहा—"उसका नाम हयात था। उसे त्रिलोचन ने नियुक्त किया था। एक मठ में मार खाने पर वह दुष्ट जंगल की ओर भागा। मैं उसके पीछे गया। वहां देखा कि बलराम के एक साथी से वह बातें कर रहा है। मैं जान गया कि महिलाओं को छीन लेने के लिये ही यह सारा प्रपंच रचा गया है। यही मेरे सन्देह का कारण था।"

राजा—"तुम्हारा जीवन केवल सचाई से बच सकता है, अन्यथा नहीं। क्या तुमने उन लोगों को कहते हुए सुना कि—इस काम के लिये महाराज जयसिंह की आज्ञा थी ?"

कुमार—"यदि वे पापात्मा ऐसी बातें कहते तो भी उनका विश्वास कैसे किया जाता। महाराज ने मुझे स्पष्ट शब्दों में अपनी आज्ञा सुनाई थी, और मार्ग-क्रम के लिये यह कागज दिया था। क्या महाराज की अपेक्षा वे अधिक विश्वस्त हो सकते हैं ?"

मानसिंह की चेष्टा विफल हुई। उसका मतलब न सधा। उसने पुनः पूछा—"मैं जानना चाहता हूँ कि पिंडारी तथा बलराम के आदमियों के बीच में जो वार्तालाप हुआ था उससे कुछ ऐसा पता चलता था कि महाराज जयसिंह ने ही उन्हें ऐसा करने को नियुक्त किया था।"

कुमार ने कहा—"मैंने ऐसा कुछ नहीं सुना।"

राजा ने कटाक्ष भरे शब्दों में कहा—"तुम अत्यन्त स्वामी भक्त हो। किन्तु मैं निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि महाराज की आज्ञा का अक्षरशः पालन करके तुमने उनकी आशा पर पानी फेर दिया।"

कुमार—"प्रभो! मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि महाराज ने मुझ पर इन महिलाओं की रक्षा का भार रखा और मैंने उस भार को वहन करने में कुछ उठा नहीं रखा। जयनगर से शोणमन्दिर तक तथा वहां से कूर जी के धाम पहुँचने तक मैंने उन्हें बचाने की सदा चेष्टा की। महाराज के आदेशों को मैंने निष्कपट और माननीय समझा। यदि उनका उद्देश्य कुछ भी विपरीत रहता तो मुझे तथा मेरी जाति के किसी भी पुरुष को वह उचित प्रतीत नहीं होता।"

मानसिंह मतलब पूरा न होते देख कर बहुत असंतुष्ट हुआ। किन्तु उसने असंतोष को छिपाते हुए पूछा—"धनुर्धर! तुम में सच्चे पंजाबी का अहंकार वर्तमान है।

किन्तु मेरी बातों पर ध्यान दो। कुछ भयभीत व्यक्ति शोण-महल से प्राण लेकर भागे। उन लोगों ने मुझे खबर दी कि तुम विद्रोहियों के सरदार बन कर नगर में घूमते थे। यह घटना महन्त की हत्या के पहले की है। अब यह बताओ कि उस विषय में तुम्हें क्या आज्ञा मिली थी? हत्याकांड की समाप्ति के बाद भी तुमने बलराम से बातें कीं। कहा जाता है कि उस अवसर पर तुमने आपने को जयसिंह का प्रतिनिधि बताया इसका क्या अभिप्राय था?"

कुमार—"भगवन्! इस बात की साक्षी अनेकों व्यक्ति दे सकते हैं कि मैंने स्वयं अपने आप को नगर में दूत नहीं बताया था। स्वयं नागरिक इतने हठी मालूम पड़े कि उन्होंने मेरी एक न सुनी। जिन लोगों ने महन्त जी की हत्या की वे हम लोगों को कब छोड़ने वाले थे? सारी सभा रक्त-रंजित होने ही को थी कि मैंने अवसर देखकर समयानुकूल कार्य किया। मुझे यहां एक युक्ति सूझ पड़ी। मैं सच्चे हृदय से कहता हूं कि नागरिकों के लिये महाराज ने कोई सन्देश नहीं दिया था। उनकी ओर से उन्हें विद्रोह करने का इशारा तक न था।"

क्रूर—"वस्तुतः नवयुवक ने उचित कार्य किया। अगर यह वैसा न करता तो परिणाम बुरा होता। उसके इस आचरण से महाराज जयसिंह के सम्बन्ध में सन्देह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।"

अब सारी सभा भन-भनाहट से भर गई। किन्तु मानसिंह को इससे क्रोध आया।

इसी समय देवनाथ सम्वाद लाया कि लम्बोदर नगर से एक दूत आया है। सुनते ही सारी सभा पुनः शांत हो गई।

मानसिंह—"यह क्या? डोम चमार भी दूत भेजने लगे? खैर, उसे शीघ्र उपस्थित करो। भगवान् भूतनाथ की कृपा होगी तो दूत से शत्रुओं के विषय में बहुत कुछ समाचार मिल जायगा। वह अपने भेजने वालों का अभिप्राय प्रकट करेगा। यह सैनिक तो कुछ नहीं बताना चाहता।"

लम्बोदर नगर का संदेश-वाहक राजा, महाराज, तथा अन्य सभासदों के सामने उपस्थित हुआ। उसने संक्षेप में कहा कि मेरे स्वामी की पहली इच्छा यह है कि वह लम्बोदर नगर के जागीरदार बना दिये जायें। राजा मानसिंह इस कार्य में सहायक हों। दूसरी बात, कि राजा साहब आशावाला को उसके निकट भेज दें, और जयसिंह को मुक्त कर दें।

महाराज जयसिंह ने तुरन्त घोषित किया कि बलराम विश्वासघातक और हत्यारा है। अतः उसे जागीरदार और महन्त बनने का कोई अधिकार नहीं है। राजा साहब आशावाला को अपनी शरण से निकाल कर उस "बन मानुष" के, सुपुर्द कभी न करेंगे।

इधर त्रिपुरारिदत्त ने उस सन्देश वाहक की परीक्षा लेनी प्रारम्भ की।

अल्लू ठाकुर ने महाराज से धीरे २ गुनगुना कर कहा कि बेचारा हयात है, कोई दूसरा आदमी नहीं है। अब जयसिंह ने प्रकट किया कि वह पाखंडी दूत एक अपराधी है। मेरे राज्य से भाग निकला था। राजासाहब, यदि आपको कुछ आपत्ति न हो तो मैं उसके निमित्त किसी और दण्ड का विधान करूँ। राजासाहब भी मान गए। त्रिलोचन उसे वहाँ से अलग ले गया। दो बधिक भी पीछे से गये। अब मानसिंह को जयसिंह पर पूरा विश्वास हो गया।

[ १८ ]

अब महाराज जयसिंह के साथ मानसिंह पुनः मित्र-सा बर्ताव करने लगा। हिरण्याक्ष महल से हटा कर महाराज का डेरा अच्छी जगह डाला गया। कम-से-कम दिखावटी विश्वास तथा मैत्री दोनों के बीच स्थापित हो गई।

बड़े लोग छोटे लोगों को मतलब साधने के अभिप्राय से साधन-स्वरूप काम में लाते हैं। परन्तु ज्योंही उनकी सहायता की आवश्यकता नहीं रह जाती है कि वे उनको विस्मृत कर देते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अपने स्वार्थ की वेदी पर उस बेचारे को बलि तक चढ़ा देते हैं। ठीक-ऐसी ही अवस्था में पड़ा-हुआ हयात अपने भाग्य को रो रहा था।

उसके दोनों पार्श्व में बधिक और पीछे पीछे सैनिक चल रहे थे। भीड़ बड़ी भारी थी। दर्शक असंख्य थे। हयात को फाँसी देने को सभी पास वाले जंगल में घुसे। पद्मनाभ ने एक बड़े से बड़ के वृक्ष को देख कर हँसते हुए

कहा—इस पेड़ में इतना बड़ा फल लगे तो कुछ भी हानि नहीं।

अपराधी एक टीले पर खड़ा कर दिया गया। चारों ओर सैनिक पहरा दे रहे थे। अकस्मात् हय्यात की दृष्टि कुमार पर पड़ी। कुमार भी अपने पाखंडी पथ-प्रदर्शक का वध देखने चला आया था।

बधिकों ने कहा—अब तय्यार हो जा।

त्र्यंबक ने पूछा—"क्या किसी वस्तु की इच्छा है?"

हय्यात—"मैं केवल एक बात चाहता हूँ कि मुझे उस पंजाबी सिपाही से क्षण-भर बातें करने की आज्ञा दे दी जाय।"

बधिकों ने कुछ देर तक आना-कानी की। पर त्र्यंबक को खयाल हुआ कि कुमार-सुन्दर का महाराज के यहाँ बहुत सम्मान था। सभी उसका विश्वास करते थे। अतएव, उससे बातें करने देने में कोई हानि न होगी।

आज्ञा मिल गई।

अपराधी ने कहा—"मैं युवक से एकान्त में बातें करना चाहता हूँ।" किंतु उसके स्वर में निराशा भरी थी।

पद्मनाभ—"यह हमारी सामर्थ्य के बाहर की बात है।"

हयात—"यदि मैं आपको दस रुपए दूँ तो,......।"

पद्मनाभ—"दुष्टों को फाँसी पर चढ़ाते-चढ़ाते मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया है। अब इन रुपयों से कुछ दिन बोतलों

का खर्च ही चलेगा। जरा गला तर करने का मौक़ा मिलेगा। लाओ दो!"

यह सुनकर हय्यात कुमार से बोला—"कुमार, जब इन लोगों ने मुझे पकड़ा तो कानी कौड़ी तक झाड़ ली। अब मैं दूँ तो क्या! किंतु तुम्हारे रुपये पानी में नहीं पड़ेंगे। तुम्हें बहुत लाभ होगा। मेरी बात मानो।"

कुमार ने बधिकों को रुपये दे दिये। वे लोग दूर हट गये।

हय्यात ने कहना शुरू किया—"मैं महाराज के कानों तक एक अति गुप्त रहस्य पहुँचाना चाहता था। वह गुप्त रहस्य तुम सुनो। बलराम ने लंबोदर नगर में अति विशाल सेना एकत्र की है। उसकी शक्ति दुर्जेय है। महंत के खज़ाने के बल पर इस सेना की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। परंतु बलराम मानगढ़ी वीरों से खुले मैदान में युद्ध नहीं करना चाहता। वह नगर में रह कर भी किसी सेना का सामना नहीं करना चाहता। वह रात्रि के समय सारे दल-बल के साथ सहसा टूट पड़ेगा। उसके सैनिकों में अनेक ऐसे वीर रहेंगे जिनके शरीर पर जयनगर के झिलम-बख्तर दृष्टिगोचर होंगे। वे "जय नगर की जय हो"—"महावीर बजरंग बली की जय हो"—"समलाई देवी की जय हो"—आदि जय घोष करेंगे। इससे मानगढ़ियों को विदित होगा कि नगर में जयनगर की सेनायें भी हैं और

वे अवश्य घबरा उठेंगे। ऐसी अवस्था में जयसिंह महाराज यदि अपनी सेनाओं के साथ सहायता करें तो निश्चय जानो कि—मानगढ़ का मान सदा के लिये मिट्टी में मिल जायगा। बस इतना ही मेरा रहस्य था।"

कुमार—"सचमुच यह बड़े मौके की बात है। दो परस्पर-विरोधी राज्यों के लोगों के एक स्थान पर जमा होते ही उनके हृदय में द्वेष की आग धधक उठेगी।"

हयात—"इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अब तुम जाओ।"

कुमार—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। बताओ तुम और क्या चाहते हो ? यदि वह मेरे अधिकार की बात होगी तो मैं अवश्य उसके अनुरूप कार्य करूंगा।"

हय्यात—कोई बड़ी मांग नहीं है। यदि मेरा वियोग इस संसार में किसी को होगा तो बेचारे कल्लू को। वह बदनसीब घोड़ा आज तक मेरी सच्ची सेवा करता रहा। तुम यहाँ से एक मील दक्षिण, उसे एक कोयलकोड़े की परित्यक्ता झोपड़ी में दाना खाते पाओगे। इस प्रकार सीटी बजाना और वह तुम्हारे पास आ जायगा। (इतना कह कर उसने एक विशेष प्रकार का स्वर निकाला।) जब वह निकट आ जाय तो यह लगाम उसके लगा देना। उसे प्राप्त करके तुम बहुत लाभ उठा सकते हो। यह मत समझो कि मैं उसका मालिक हूँ, इसलिये उसकी प्रशंसा कर रहा हूं। युद्ध में कल्लू

तुम्हें बड़े काम का प्रतीत होगा। आवश्यकता पड़ने पर तुम्हें वह कभी निराश नहीं करेगा। वह स्वयं सुख या दुख की परवाह नहीं करता। यदि मैं रोहिताश्वनगर का द्वार पार कर जाता तो आज मेरी ऐसी दशा न होती। क्या तुम कल्लू पर दया करोगे ?"

कुमार—"मैं शपथ खाता हूँ कि अवश्य करूँगा।"

कुमार अब तक समझता था कि हय्यात के हृदय में दया-धर्म छू तक नहीं गया है। परन्तु उसे अब मालूम हुआ कि पाषाण हृदय में भी दया-करुणा का स्थान रहता है। केवल अप्रयोग अथवा कुप्रयोग के कारण वह मूक-प्राय हो जाती है।

हयात—"अच्छा, अब तुम जाओ। खुदा खैर करे। किन्तु एक क्षण और ठहर जाओ। एक महिला ने मुझे एक काम सौंपा था, यदि उसके लिये प्रबन्ध न होगा तो मैं कृतघ्न होकर मरूँगा। इस भार को लेकर मरना मुझे पसन्द नहीं। यह पत्र लो। यह बलराम की पत्नी श्रीमती हेमांगिनी से प्राप्त हुआ है। एक बात और—मैं कहना भूल ही गया था। खोगीर में एक थैली है जिसमें सोने की गुल्लियाँ भरी हैं। उन्हें ले लेना। मैं तुम्हें अपना उत्तराधिकारी बनाये जाता हूँ।"

कुमार—"मैं उन्हें किसी अच्छे काम में खर्च कर दूँगा, जिससे तुम्हारा परलोक सुधरे।"

हयात —"ख़बरदार ! उस शब्द का उच्चारण भी न करना। ऐसी कोई वस्तु नहीं है। यह सिर्फ मुल्लाओं का ढोंग है।"

पत्थर पर दूब जमाना और हयात के हृदय में परलोक का चेत कराना एक जैसा था। अतः कुमार ने उससे अन्तिम बिदा मांगी। पिंडारी ने सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दी। जान पड़ता था कि उसका मस्तिष्क विचार सागर में गोते लगा रहा था।

कुमार अब वहां से दक्षिण दिशा को चला और उसे आसानी से कल्लू मिल गया। उसने वैसी ही सीटी बजाई जो हयात से सुनी थी। पशु निकट आ गया पर एक अन-जान आदमी को पाकर बिदकने लगा। कुमार बचपन से घोड़ों का हाल जानता था। इसके अलावा बहुत दिनों से हयात के साथ यात्रा करते-करते वह कल्लू के विशेषगुणों से परिचित हो गया था। उसने घोड़े पर काबू कर लिया।

## [ १६ ]

महाराज जयसिंह रात-दिन राजा मानसिंह से मशविरा लेने लगे। दोनों ने निश्चय किया कि एक साथ लम्बोदर नगर पर आक्रमण किया जाय। सहायक सेना को बुलाने के लिए आज्ञा भेज दी गई। राजा ने महाराज जयसिंह को सार्वजनिक सभा में वचनबद्ध कराया कि आशाबाला का विवाह गोरगढ़ के 'बाबूसाहब' से होगा। महाराज के हृदय पर वज्रपात सा हुआ। किंतु स्वीकृति प्रदान करने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं था।

कुछ काल के पश्चात् गोरगढ़ाधीश आये। कुमारी आशा भी पहुँची। उन्हें वहां उपस्थित होने के लिये मानसिंह की आज्ञा थी। राजा ने कहा कि हम दोनों नरेशों की सम्मति है कि आशा तथा 'बाबूसाहब' का परिणय हो जाय तो अच्छा हो। यह बहुत सोच-विचार कर निश्चित किया गया है। हमारा प्रधान उद्देश मानगढ़ और जयनगर के बीच में अटल मैत्री स्थापित करना है।

जयसिंह चुपचाप बैठे इन बातों को बड़े कष्ट के साथ सुन रहे थे। वह यदि भावी अनर्थ का विरोध नहीं करते हैं तो प्यारी ज्योत्स्ना का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है, और यदि वह विरोध करते हैं तो तुरन्त तलवार की धार उतरते हैं। अन्त में उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा।

इस प्रस्ताव को सुनकर गौड़-कुमार की प्रसन्नता का वारापार न रहा। राजा मानसिंह ने कुमारी की ओर फिर कर कहा—अब तुम्हारे आपत्ति करने को कोई गुंजाइश नहीं है।

आशाबाला ने साहस करके कहा—"राजा साहब! आप मेरे अधिराजा हैं। मैंने श्रीमान् की आज्ञा सुन ली। उसे मानने को भी तय्यार हूँ......।"

कुमारी पूर्ण रीति से कह भी न सकी कि बीच ही में राजा बोल उठा—"बस इतना ही काफ़ी है। अब अधिक कहने पूछने की जरूरत नहीं। शेष सब कुछ मैं स्वयं ठीक कर लूंगा।"

परन्तु आशाबाला इस भुलावे में पड़ने वाली न थी। उसने सोचा कि इस समय जो निर्णय हो जायगा वही अटल रहेगा। उसने ऊंचे स्वर में कहा—"प्रभो! आपके पूर्वजों ने मेरे पुरखों को कृष्णपुरी की जागीर दी थी। मैं उसी की अधिकारिणी हूँ। आज आप में और मुझमें

उसी के द्वारा नाता है। किंतु आपकी इच्छा हो तो उसे आप अभी वापिस ले सकते हैं। मुझे इसकी तनिक भी चिंता नहीं है। परन्तु यह तुच्छ शरीर न आपके पूर्वजों का दान है और न आप ही का। मैं अब सबसे नाता तोड़कर मा तपस्विनी की अनुगामिनी बनना चाहती हूँ। मेरी यही उत्कट अभिलाषा है। मुझे इससे विमुख कौन कर सकता है?"

राजा मानसिंह ने चिढ़कर पूछा—"क्या बिना कुछ लिये ही तपस्विनी तुझे आश्रय दे देगी?"

आशा०—"यदि मा अपने आश्रम के प्रति ऐसा अन्याय करेगी तो मुझे पूरा विश्वास है कि कुष्णपुरी के प्रशस्त परिजन मुझ अनाथिनी की सहायता करेंगे।"

राजा—"झूठ! बिलकुल झूठ! तूने किसी यार से नेह लगा रक्खा है, उसी को छिपाने के लिये यह सब आडंबर रचा है। गौरगढ़ाधीश! जिस समय मैं इसका झोंटा पकड़ कर विवाह-मंडप में खींच लाऊंगा, उस समय यह क्या, इसके पुरखा भी सहमत होजायेंगे।"

लेकिन 'बाबू साहब' ने भी यह कहते हुए असहमती प्रकट कर दी—"राजा साहब! मैं पलामूँ के एक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। भाव का भूखा हूँ। कुमारी ने खुले शब्दों में मुझ से विवाह में असहमति प्रकट की है। अतः मैं इसकी चर्चा अब नहीं कर सकता!"

मानसिंह ने अंगारे की तरह आंखें करके एक बार 'बाबू साहब' को देखा; पुनः महाराज पर दृष्टि डाली। और अपने मंत्री से कहा कि यह नादान छोकड़ी अब जेल की हवा खाना चाहती है। इसकी सारी संपत्ति जब्त की जाय और जब तक यह सुधार के निमित्त कारागार-वास नहीं करेगी तब तक इसका दिमाग़ दुरुस्त नहीं होगा।

सारी सभा में सन-सनी फैल गई। ... एक दूसरे की ओर देख रहा था। अंत में क्रूर ने कहा—"राजा साहब ! आप अपने फैसले को फिर ग़ौर से देखें। मानगढ़ का कोई सरदार आप के इस दुर्व्यवहार को सहन नहीं कर सकता। एक भद्र महिला का ऐसा अपमान ! हम में से प्रत्येक का सम्बन्ध उस वंश से है जिसमें इस अभागिनी का जन्म हुआ है। अतः आप स्मरण रखिये कि केवल एक अबला का नहीं वरन् सारे मानगढ़ का मान मिट्टी में मिलाया जा रहा है।"

राजा ने देखा कि सारी सभा को सम्मति प्रायः एक सी है। यदि मैं अपने सहायकों को अप्रसन्न करता हूँ तो संभव है कि महाराज जयसिंह इससे लाभ उठावें। वह बोला—"क्रूर जी ! आप का कथन सर्वथा सत्य है। मैंने फैसला सुनाने में शीघ्रता करदी। अब उस मंदभागिनी कुमारी का न्याय मान-संघ के नियमों के अनुकूल होगा। उसका लंबोदर नगर तक भाग जाना ही महंत की हत्या

का कारण है। अब जो वीर उस दुष्ट बलराम से बदला लेगा तथा उसका सिर काट कर मेरे पास लायेगा वही इस कुमारी का अधिकारी होगा। यदि उसे कुमारी न चाहेगी तो उसकी जागीर उसे देदी जायगी। यह उस व्यक्ति के ऊपर निर्भर रहेगा कि—वह उस सम्पत्ति का कौन सा भाग इसके तपोमय जीवन के निमित्त निकाल कर इसे दे।"

आशा बाला कुछ कहना ही चाहती थी कि सारी सभा में खुशी तथा स्वीकृति की ध्वनि गूँज उठी। अतः उसके शब्द उस कोलाहल में विलीन हो गए।

[ २० ]

अपने वीरों एवं सैनिकों सहित महाराज जयसिंह ने रोहिताश्वनगर से लंबोदरनगर को प्रयाण किया। बाहर मानगढ़ी सेना सुसज्जित होकर चलने को तैयार थी। जयसिंह भी उससे जा मिले।

पंजाबी-संरक्षक दल भी दोनों सेनाओं के साथ नगर से बाहर निकला।

इस दल में कुमार सुन्दर भी था। जब वह महिलाओं के निकट से पार हो रहा था, तब उसने अपनी बर्छी की नोक पर रख कर एक पत्र आशाबाला को समर्पित किया, जो श्रीमती हेमांगिनी का लिखा था।

क्रूर—"अब अत्याचार की हद हो ली। एक साधारण सैनिक की इतनी धृष्टता!"

दौलतराय—"क्रूर जी! उसके प्रति ऐसे अपशब्दों का प्रयोग न करें। उसकी वीरता के विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। आशाबाला की रक्षा में वह अपने प्राणों तक की परवाह नहीं करता।"

यह सुनकर आशाबाला की मुखाकृति रक्तवर्ण हो गई। उसके हृदय में लज्जा का संचार हुआ, किन्तु बेतुकी बातें सुनकर उसे कुछ क्रोध भी अवश्य हो आया। उसने कहा—"आप लोग व्यर्थ की बातें करते हैं। मेरी हत-भागिनी दीदी हेमांगिनी ने यह पत्र लिखा है। पत्र से तो पता चलता है कि वह कुशलपूर्वक है, पर अनुमान है कि उसकी अवस्था अवश्य ही शोचनीय होगी।"

क्रूर—"सुनाओ-सुनाओ! सुनें, 'वनमानुष' की स्त्री क्या कहती है?"

कुमारी ने पत्र पढ़ना आरम्भ किया—

"शोणमहल,
... ... ... ...।

"प्रिय आशा,
शुभाशीर्वाद!

तेरी कोई खोजखबर नहीं मिली। सदैव चिंता बनी रहती है। आशा है, यह पत्र तुझे प्राप्त होगा। मेरे लिये व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं। भर्तृहरि ने कहा है—

'वयमिव परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः,
समइह परितोषो नास्ति शेषावशेषः।
सहितु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥'

अतः मैं समझती हूँ कि तुच्छ मृत्तिका से यदि सत्पात्रों का निर्माण किया जाय तभी कुम्भकार की प्रशंसा है, अन्यथा नहीं। यह बात ठीक है कि उचित वैवाहिक विधि का अनुसरण नहीं किया गया, किंतु "जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै"—जो एक प्रधान नीति है उसी का अनुसरण मैं करना चाहती हूँ।

मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मेरे भर्त्ता वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ महावीर हैं। तुमसे यह बात छिपी नहीं कि अपने पराक्रम से ही वह राज्य प्राप्त कर सके हैं। मेरा अनुरोध है कि उन्हें तू दूसरों की कहानी पर नीच न मानना। तेरा नाम आशा है। आशा रख तथा प्रतीक्षा कर। तू स्वयं उनसे परिचित हो जायगी।

तेरी—

हेमांगिनी"

परन्तु जब आशावाला पत्र पढ़कर सुना रही थी, उसने देखा कि पत्र के एक कोण में थोड़ी "पश्चात्-लिपि" है। उसने उसे पढ़कर सुनाना उचित नहीं समझा। हेमांगिनी ने अन्य स्त्रियों की भाँति उसमें लिखा था कि उसके दिन कैसे-कैसे कार्यों में व्यतीत होते थे। उसने यह भी उल्लेख किया था कि युद्धकाल में मेरे पति अन्य वीरों को अपने समान अस्त्र-शस्त्र एवं पोशाक से सुसज्जित करके स्वयं गौरगढ़ाधीश का स्वांग बनायेंगे।

प्रधान पत्र के अतिरिक्त आशा के दूसरे हाथ में एक और भी छोटा कागज का टुकड़ा था। उसमें लिखा था कि– "आशा! यदि तुझे मेरे विषय में अतिशीघ्र कोई समाचार न मिले तो समझना कि मैं मर गई। किंतु मुझसे घृणा न करना।" इन शब्दों को भी उसने पढ़कर सुनाना उचित नहीं समझा।

अब तक आशा ने हृदय की आशा को हृदय ही में छिपा रक्खा था, किंतु अब उसके मानस-नभ में नवीन भावों की बिजली चमकने लगी। अतः उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि ज्योंही सेनाएँ भली भाँति तय्यार होकर चलने को थीं, त्योंही किसी अपरिचित हाथ से कुमार-सुन्दर को एक पत्र मिला। आशाबाला ने त्रिशूल का चित्र बनाकर लिखा था "वह व्यक्ति जो उन चिन्हों से उस समय भयभीत न हुआ जब वे सच्चे गौरगढ़ाधीश के वक्षःस्थल पर थे, तो वह उनसे कदापि डर नहीं सकता जब उन्हें किसी अत्याचारी हत्यारे ने धारण किया हो।" कुमार ने उसे असंख्य बार छाती से लगाया और अति पुलकित गात हो वह नवीन उत्साह के साथ आगे बढ़ा।

चलते-चलते बिना किसी कठिन रुकावट का सामना किए ही सेना शोणभद्र की उपजाऊ तराई में जा पहुँची। लंबोदर-नगर भी सामने आगया। शोणमहल धूल में मिला दिया गया था। बलराम सारी सेनाएँ समेट कर

नगर में डटा हुआ था। खबर थी कि वह मानगढ़ और जयनगर की संयुक्त-शक्ति का सामना खुले मैदान में करना नहीं चाहता था।

बड़ी कठिनाई से एक धनवान नागरिक का विहारालय नगर के बाहर मिला। उससे सभी लोग निकाल दिए गए और राजा मानसिंह तथा उनके अन्तरंग मित्रों का डेरा उसमें डाला गया।

दौलतराय, कर्पूरसिंह तथा अन्य अफ़सरों ने सैनिकों की सहायता से दीवारों को तोड़ा, झाड़ियों से राह निकाली, गड्ढे भरे तथा अन्य आवश्यक कार्य किए; जिनसे समय पर सभी सेनाएँ शीघ्रता से एकत्र की जा सकें और एक साथ शत्रु का सामना करना संभव हो। इन कार्यों में बलवान् रणधीर ने बहुत सहायता पहुँचाई क्योंकि उसका शरीर पत्थर जैसा था।

इसी बीच में महाराज जयसिंह राजा मानसिंह के पास गए। वहां उन्होंने निश्चय किया कि कार्यक्रम क्या होगा। उन्हें यह भी मालूम हो गया कि उनसे मानसिंह कैसी सहायता चाहता था। महाराज के जाने से संग्राम-सभा की बैठक हुई जिसमें युद्ध-सम्बन्धी सभी बातें तय की गईं।

ऐसे सुअवसर को प्राप्त करके कुमार-सुन्दर ने राजाओं के समक्ष प्रवेश पाने की आज्ञा मांगी। कुछ कठिनाई के पश्चात् आज्ञा मिल गई। उसने उनके सम्मुख उपस्थित

होकर स्पष्ट रूप से कह सुनाया कि रात में बलराम की सेना जयनगर के सैनिकों का स्वाँग बना कर संयुक्त सेना पर आक्रमण करेगी। यह सुन कर जयसिंह को किञ्चित् आश्चर्य हुआ। संभवतः एकान्त में ऐसा संवाद सुनकर वह अति प्रसन्न होते। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि यह समाचार सच हो या झूठ, हम लोगों को इस विषय में सतर्क रहना चाहिए। परन्तु मानसिंह विचित्र स्वभाव का व्यक्ति था। उसे इस सम्वाद में जरा भी विश्वास न हुआ।

उसने कहा—"कभी नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि बात कुछ ऐसी रहती तो जयनगर का आश्रित पञ्जाबी धन्वी भूल कर भी मेरे सामने यह संवाद नहीं सुनाता।"

इस पर महाराज के कहा—जो हो, लेकिन मेरी प्रार्थना है कि आप अपने सैनिक अफ़सरों के साथ सदा सतर्क रहें, जिससे ऐसी दुर्घटना आ जाने पर भी पारस्परिक द्वेष एवं सन्देह को स्थान न मिल सके। मैं अपने सिपाहियों को आज्ञा देता हूँ कि वे अपनी-अपनी बाहों पर एक-एक उज्ज्वल रूमाल बांध लें।

[ २१ ]

रात्रि शनैः शनैः तरुणवयस्का हुई। उसके पूर्ण-विकसित अंगों से कालिमा की धाराएँ सर्वत्र प्रवाहित होने लगीं। वह बृहत्काय सेना जो लंबोदर नगर को घेरे पड़ी थी, धीरे-धीरे इस काल रात्रि का आधिपत्य स्वीकार करने लगी। कुछ ही काल पूर्व सैनिक अपनी-अपनी रण-ध्वजा के नीचे खड़े हो अनेक प्रकार का शाब्दिक एवं शारीरिक संकेत कर रहे थे। पर अब मार्ग-जनित श्रम के कारण वे विश्राम करने को अधीर हो उठे। कोई दीवार की ओट में पड़ा था तो कोई झाड़ियों की। कोई थोड़ी भी नीची भूमि जानकर उसी पर लेट गया। कोई अस्त्र-शस्त्रों का थोक लगाकर उसी की ओट में लेट गया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रायः सारी सेना निद्रा-देवी की गोद में जा लेटी। बहुत से सैनिक अन्य लोगों की अपेक्षा जल्दी सो गए थे। जयसिंह तथा मानसिंह के वासस्थान की संरक्षा में जो सैनिक लगे थे, वे भी ऊंघ रहे थे।

महाराज ने जयनगरी सेना तथा नगर के बीच में अति सावधानी से कुमार-सुंदर को खड़ा कर दिया था। वह नगर की आहट लेने के लिए उसी ओर बहुत दूर निकल गया। वह आँखें फाड़-फाड़ कर अंधकार का अध्ययन करता था। निशा का यौवन क्रमशः क्षीण होने लगा। नगर से तीन बजने का शब्द सुनाई पड़ा। नगर निष्प्राण श्मशान सा हो रहा था।

कुमार के मन में तरह-तरह की भावनाएँ उठ रही थीं। वह सोचने लगा कि प्रायः दो घंटे में भगवान् तिमिरारि अपने सारथी को भेजेंगे। तत्पश्चात् वह स्वयं मरीचिमाला धारण कर प्राची में पधारेंगे। पर्याप्त प्रकाश चारों ओर परिव्याप्त हो जायगा। बलराम का कृत्रिमरूप पहचानने में मुझे कुछ भी कठिनाई न होगी। आक्रमण यदि होगा तो प्रातःकाल के समय। ऐसा सोच-सोच कर वह आनंद का अनुभव कर ही रहा था कि नगर में एक गूँज सी सुन पड़ी। जान पड़ा कि किसी ने मधु चुराने के लालच से भौंरों को अपने छाते से निर्वासित कर दिया है; अतएव वे क्रोध पूर्ण शब्द करते हुए अपने चिर-संचित धन की रक्षा के हेतु—उस पर सहसा एक साथ टूट पड़े हैं।

जब शब्द अधिक स्पष्ट होने लगा और यह भी जान पड़ा कि वह उसी ओर बढ़ रहा था जहाँ कुमार स्वयं

खड़ा था तो उसने जाकर इसकी सूचना अपने मामा को दी। मुट्ठी भर पंजाबी धन्वी, जो वहाँ उपस्थित थे रणधीर की संरक्षा में अस्त्र-शस्त्र लेकर तय्यार हो गए। श्रीमान् कर्पूरसिंह उनके सामने आकर खड़े हो गए। उन्होंने महाराज को इसकी खबर भेज दी। तत्पश्चात् अपने सैनिकों को 'संरक्षिका अग्नि-शिखा' के पीछे इतनी दूर ले गए कि उस के आलोक में वे शत्रुओं को दीख न पड़ें।

कुमार ने निवेदन किया—सरदारजी, मुझे आगे बढ़ने की आज्ञा दीजिये। मैं आपका शत्रुओं का समाचार ला दूंगा।

कर्पूरसिंह ने उत्तर दिया—तुम्हारा विचार अच्छा है। तुम्हारे आँख-कान बहुत तीव्र हैं। शत्रुओं का भेद पाना भी अत्यावश्यक है; किंतु तुम्हारे जैसे प्रियपात्र के प्राणों के सामने मैं उसका कुछ भी मुल्य नहीं समझता।

कुमार ने अपनी बन्दूक उठाई और निकल पड़ा। उसने गोधूलि के समय अड़ोस-पड़ोस का निरीक्षण प्रायः समाप्त कर लिया था। अतएव, वह निधड़क आगे बढता गया और अंत में एक बड़ी सेना के समीप आ पहुँचा। किंतु उसके आगे थोड़े सैनिकों की एक टोली बढ़ी चली आती थी। इससे भी निकलकर तीन शस्त्रधारी आगे-आगे काना-फूँसी करते आते थे। वे कुमार से प्रायः पाँच-छः हाथ दूर थे। उनकी बातों से विदित होता

था कि वे कार्य-पटु न थे। उन्हें यह भी नहीं सूझता था कि इस समय किस मार्ग का अवलम्बन करना श्रेयस्कर होगा।

प्रगाढ़ अन्धकार रहते हुए भी उनकी आँखें बचाकर लौट जाना कुमार के लिए संभव न था। उसने डाँट कर पूछा—कौन है ?

उत्तर मिला—,'लं-बो-द्-द्-र नहीं-नहीं, जयनगर।" कुमार तुरन्त रहस्य ताड़ गया। उसने बन्दूक का घोड़ा दबाया। अवाज़ हुई। एक व्यक्ति गिरा। कुमार शीघ्रता के साथ पंजाबी-धन्वी-मंडल में जा मिला।

कर्पूरसिंह ने इस कार्य के लिए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—नौजवानो, पीछे हट चलो! हम लोग मुट्ठी-भर हैं और वे असंख्य हैं। अतएव, खुले मैदान में उनका सामना करना बुद्धिमत्ता का कार्य न होगा।

सभी महाराज की निवास-कुटी के आँगन में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन लोगों ने जयनगर के अन्य सैनिकों को सज धज कर तय्यार देखा। महाराज भी रिकाब में पैर रखने को उद्यत थे।

कर्पूरसिंह ने पूछा—"महाराज! आप कहाँ चले ? क्या ही अच्छा होता कि इस समय आप अपने लोगों के बीच ही में रहते।"

जयसिंह—"ऐसा नहीं हो सकता। मैं राजा मानसिंह के निकट तुरन्त जाऊँगा। इस समय उनके हृदय में जय-

नगर की साधुता के प्रति दृढ़ विश्वास जमाना है। ऐसा न होने से हमें उपद्रवी नागरिकों तथा मानगढ़ी सेना, दोनों ही का शिकार बनना पड़ेगा।" इतना कहकर वह उछलकर घोड़े पर सवार हो गए और दौलतराय को जयनगरी सेना का भार सौंपकर बोले—आप बाहर जाकर युद्ध के लिए डट जाइये। कर्पूरसिंह को पन्जाबी-दल तथा अन्य गृह-संरक्षकों की देख-रेख करने की आज्ञा मिली।

सुन्दर को साथ लेकर महाराज राजा मानसिंह के पास आ पहुँचे। देखा तो मानसिंह की अवस्था अकथनीय जानपड़ी। क्रोध के मारे वह विक्षिप्त सा हो रहा था। सेनापति का कार्य सुचारु रीति से सम्पदित करने में वह असमर्थ सा प्रतीत हुआ। महाराज वहाँ केवल कुमार रणधीरसिंह, कुमार सुन्दर तथा पाँच-छः अन्य धन्वी पंजाबियों के साथ वहाँ पहुँचे थे। यह देखकर जयनगर और मानगढ़ के बीच में पुनः विश्वास का बीज अंकुरित हो आया। अमरकांत, क्रूर तथा अन्य मानगढ़ी सरदार जिनके भय से रणचन्डी भी काँपती थी, लड़ाई के लिये कटिबद्ध होगये। दूरस्थ सैनिकों को एकत्र करने लिए कितने ही अफसर दौड़ पड़े। अन्य अफसरों ने महान् प्रयत्नों द्वारा सैनिकों में युद्ध क्रम संस्थापित किया। गोले बरसने लगे। अन्धकार से परिपूर्ण वायुमण्डल युद्ध-शस्त्रों की धूम्र-राशि से और भी म्लान-मुख हो गया। किन्तु बीच-बीच में बिजली

की भाँति अग्नि-शिखा अन्धकार की चोटी पकड़ना चाहती थी। स्वय मानसिंह एक सामान्य सैनिक की भाँति बलपूर्वक शत्रुओं का शिरोच्छेदन करने में व्यस्त थे। अफसरों का कार्य प्रशंसनीय था। उनके सुन्दर प्रबन्ध से शत्रुओं को अन्त में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाना पड़ा। जयसिंह मानसिंह के ठीक विपरीत थे। वह शांत और गम्भीर बने हुये थे। उनकी मुखाकृति पर सच्चे सैनिक-नेता की आभा थी। वह गम्भीरता-पूर्वक आज्ञा देते जाते थे और वीर मानगढ़ी अफ़सर तत्परता से उनका पालन कर रहे थे।

अब दृश्य ने भीषण रूप धारण कर लिया। युद्ध में नवीन संजीवनी का सञ्चार हो आया था। वामभाग में घमसान युद्ध के पश्चात् उपनगर का अग्नि-संस्कार किया गया। किन्तु अब भी सैनिकों का रक्तपात बन्द न हुआ। रणक्षेत्र के केन्द्र में जयनगर की सेना ने बड़ी बहादुरी से अपनी तथा अपने प्रभु के छोटे विहारालय की रक्षा की। चारों ओर से धधकती हुई अग्नि-शिखा के बीच में वह भवन ऐसा दिव्य दीख पड़ता था मानों कोई महात्मा अपने प्राणों की उपेक्षा करके समाधि को प्राप्त हो रहा हो।

युद्ध के वामभाग की अवस्था शोचनीय थी। कभी नागरिकों की विजय होती तो कभी मानगढ़ की। इसका कारण यह था कि नवीन सैनिकों की टोलियाँ नगर से

निकल-निकलकर पीछे से शत्रुओं से मिल जाती थीं; अतएव उनकी शक्ति बढ़ जाती थी। पर मानगढ़ियों में भी, अक्लांत सैनिक जो पीछे रक्खे गए थे, समयानुकूल आ मिलते थे। अतएव, इनकी शक्ति का भी संहार नहीं होने पाता था। इस प्रकार तीन घंटों तक भीषण युद्ध होता रहा और अन्त में अरुणोदय हो चला। यह देखकर मानगढ़ की सेना नई-नई आशाओं तथा प्रोत्साहनों से भर गई। उनकी चिंता दूर हुई। अब संग्राम के दक्षिण तथा मध्य प्रांतों में भी शत्रु का बल क्षीण होने लगा।

महाराज ने सुन्दर तथा रणधीर को कर्पूरसिंह आदि के पास जाने की आज्ञा दी। मामा भानजे घोड़े कुदाते हुए दौलतराय तथा कर्पूरसिंह के पास जा पहुँचे। दोनों अफ़सरों के साथ बहुत कम सेना थी। अतः उन्हें अब तक बचा-बचाकर युद्ध करना पड़ता था। इस कारण वे अति क्लान्त हो गए थे। महाराज का सम्वाद सुनकर वे बहुत खुश हुए और तुरत निर्दिष्ट दिशा में बढ़ने की चेष्टा करने लगे।

कर्पूरसिंह—"दौलतराय, मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहता हूँ कि यदि तुम मेरे निकट घोड़े पर सवार न होते तो मुझे पूर्ण विश्वास हो जाता कि तुम शत्रुओं से जा मिले हो और अपनी गदा के सहारे उन्हें संचालित कर रहे हो। यदि वह व्यक्ति तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य न होता तो भेद इतना ही था कि तुम अपने स्वाभाविक आकार से

कुछ अधिक लम्बे दीख पड़ते थे। क्या तुम नहीं जानते कि वह भीमकाय सेना-नायक, जो तुमसे दूना जान पड़ता है, साक्षात् तुम्हारा ही भूत है ?"

दौलतराम—"मेरा भूत? मैं नहीं समझता कि तुम क्या कहते हो ! किन्तु, हाँ ! वह अभागा मेरा ही स्वांग रच कर आया है। मैं उसे इस धृष्टताके लिये अभी दंड देता हूँ।"

कुमार—"भगवन् ! आप इस दुष्टात्मा के को दण्ड देने का अधिकार मुझे दें।"

दौलतराम—"युवक ! तेरा अनुरोध मानने के योग्य है, किन्तु ऐसा नहीं होगा।" ऐसा कहते हुए घोड़े की पीठ पर उसने पीछे मुँह फेरा और अपने पार्श्ववर्ती सैनिकोंको बुलाया—"जयनगर के वीरो ! मेदिनीवंश का सम्मान रखने वालो ! पंक्तिबद्ध हो जाओ ! बर्छियां से एक साथ लक्ष्य करो ! देखा, भगवान भास्कर भी हम लोगों की कृति पर लज्जित हो संसार के सामने आने में देर लगा रहे हैं। हमारी प्राचीन वेश-भूषा का अपमान इस नगर की नालियों में तथा भीमचूल्हा के जंगली गड़हों में लोटने वाले नीच सूअर कर रहे हैं ! ऐसी वीरता दिखाओ कि उनके रोम-रोम में बर्छियां छेद कर दें।"

वीरों के रोंगटे खड़े हो गए। वे पुलकितगात हो प्रतिशोध के भाव से भर उठे। उनका नायक बीच में हो गया। सभी पूर्णवेग से घोड़े दौड़ाते निर्दिष्ट शत्रु पर झपटे।

बात की बात में उनकी बर्छियाँ झिलमों से टकरा कर चूर-चूर हो गईं। अतः उनने लम्बी-लम्बी तीव्र तलवारें निकालीं। जब उन्होंने इन भारी हथियारों से चोट की तो बलराम के बर्छीदारों का धीरज छूटने लगा। महाराज के घोड़े, सवारों की भाँति सिर से पैर तक लोहे की झूलों से ढंके थे। अतः शत्रुओं की बर्छियों से उनकी कुछ भी हानि न हो सकी। इसी बीच में दौलतराय और सुन्दर, परस्पर स्पर्द्धा करते हुए आगे बढ़ र. थे। शत्रुओं को काटते हुए वे उसी ओर अग्रसर होते थे, जहाँ दौलतराय का भूत अति बहादुरी से प्रधान सेनापति का कार्य कर रहा था। नजदीक पहुँचने पर दौलतराय ने उसके वस्त्रों पर कुछ ऐसे चिन्ह देखे जिनके कारण स्पष्टतया ही विदित हो गया कि उसने वस्तुतः गौरगढ़ाधीश का स्वरूप बनाया था। परन्तु इसी समय उसकी दृष्टि एक दूसरे प्रान्त पर पड़ी। पोशाक प्रभृति से उसे ज्ञान पड़ा कि बलराम अन्यत्र हैं। अतः उसने कुमार को संबोधित करके कहा कि "नवयुवक! तुम ही इस कार्य के योग्य हो। शत्रु का पूरा बदला लेना, मैं उधर जाता हूँ। रणधीरसिंह! तुम अपने भानजेकी सहायता करना। जब तक मैं शूकर का आखेट करूँ, कोई और इस कार्य में हस्तक्षेप न करे।"

इस समय कुमार की मानसिक अवस्था कैसी रही होगी, वर्णनातीत है। हरएक आदमी अपने-अपने अभिप्रेत

पदार्थ का ध्यान करता हुआ अपने कार्य में उत्तरोत्तर साहस तथा वीरता दिखाने लगा।

स्वयं बलराम ने रात से सैनिकों के प्रधान दल का संरक्षण अपने हाथ में रखा था। अतः उस सैन्य-विभाग ने बहुत कुछ सफलता प्राप्त की थी। किन्तु प्रातःकाल होते ही मानगढ़ का रण-कौशल सफल होने लगा, और दौलत-राय की चेष्टा ने बलराम के अभिप्रेत मार्ग में रोड़े अटका दिए। वह जिस राह से बढ़ना चाहता था, वह खाली न रह सकी। अतः असंख्य नगरवासी हताश होकर लौटने लगे। उनके पैर रणक्षेत्र से उखड़ गए और वे भाग चले। उनमें बहुत से लोग उन लोगों से मिल गए, जो जयनगर की सेना का सामना कर रहे थे।

अब जयनगर तथा मानगढ़ की सेनाओं ने पीछा करना शुरू किया। सारा जन-समुद्र नगर की दिशा में बढ़ा। नगरकी चार-दीवारी में एक स्थान पर बड़ा-सा छेद हो गया था। प्रत्येक व्यक्ति उसी राह से नगर में प्रवेश पाना चाहता था।

उसी मार्ग के एक किनारे बलराम हाथ में लोहे की गदा लेकर खड़ा हो गया और सैनिकों पर प्रहार करने लगा। जिस किसी पर गदा पड़ती थी, वह पुनः आँखें खोलकर संसार को न देखता। बलराम का शरीर भीमकाय तो था ही, इस समय नर-रक्त से सराबोर हो जाने के कारण उसमें और भी भीषणता एवं वीभत्सता आ गई थी।

कुमार सुन्दर ताड़ गया कि यह बलराम के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं। उसकी परिस्थिति तथा गदा-घात पर विचार करके अनेक पीछा करने वालों ने वह राह छोड़ दी और किसी अन्य निरापद मार्ग से नगर में घुसने की चेष्टा करने लगे। परन्तु कुमार-सुन्दर को भली भाँति विदित था कि इस गदाधर का बध करने से क्या पुरस्कार मिलेगा। अतएव, खण्डहर के निकट पहुँचते ही वह घोड़े से उछल पड़ा, और यत्न-पूर्वक चारदीवारी पर चढ़-कर अपनी तलवार से बलराम का शिरोच्छेदन करना चाहा। पर इसी समय उस वीर की दृष्टि इस पर पड़ी, और उसने अपनी गदा कुमार पर उठाई। इसी अवसर पर पीछे से भयङ्कर तुमुलनाद सुनाई पड़ा जिसमें शत्रुओं की जयध्वनि तथा अपने पक्षवालों की पराजय एवं हतो-त्साह-पूर्ण शब्दों का मिश्रण था। वह जान गया कि शत्रु पर्याप्त संख्या में, नगर में आ घुसे हैं। अतएव उसने बड़े जोर से बिगुल बजाया। सभी भीमचूल्हा वाले डाकू एक हो गए। वह उन्हें लेकर नगर के एक ऐसे प्रांत में घुसा जहां से वह सुगमता-पूर्वक शोणभद्र पार होकर भीमचूल्हा के निविड़ बनों की राह ले सकता था।

वह एक अति संकीर्ण गली से भागता जाता था। बीच में एक मन्दिर दीख पड़ा। यह बहुत ही छोटा था। उससे शब्द निकला—"जयनगर-जयनगर!"—"मानगढ़-

मानगढ़ !" बलराम ने समझा कि इस गली में भी आगेसे शत्रुओं की किसी सेनाने आकर उसका मार्ग रोक लिया है। उसने अपने साथियों को सम्बोधित करके कहा—"मित्रो ! यदि तुम में शक्ति हो तो झपटकर काटते-मारते, चीरते-फाड़ते, शत्रुओं के बीच से निकल भागो। मेरी चिंता मत करो। मैं अभी पूर्ण मनुष्य हूँ। मुझमें शक्ति की कमी नहीं है। लोगों ने मुझे घेर लिया है सही, लेकिन देखो, मैं किस रीति से इन अभागे पंजाबियों को यमालय भेजता हूँ।"

उपसेनापति ने उसकी आज्ञाका पालन किया। जो बर्छी-दार बचे थे, उन्हें लेकर वह शीघ्रता से गली के निकास को ध्यान में रखता हुआ आगे बढ़ा, क्योंकि उसी ओर से मानगढ़ी सेना का एक दल आ रहा था। अति कठि-नाई से वह लड़ता-भिड़ता उनसे निकल भागने की चेष्टा में लगा, किंतु सबने बलराम का साथ न छोड़ा था। प्रायः पाँच-छः सच्चे वीरों ने उसका साथ दिया और स्वामी के साथ विनष्ट होने को अड़े रहे। गदा घुमाते हुए बलराम ने गरज कर कहा—"ऐ पंजाबी वीरो ! किसे मुकुट पहनने की इच्छा है? भीमचूल्हा के सरदार पर कौन प्रहार करेगा? नवयुवको ! मुझे विदित होता है कि इस कार्य के निमित्त औरों की अपेक्षा तुम अधिक उत्सुक हो। अच्छा मुकुट की जगह पहले यह धारण करो।" इतना कहकर उसने गदा का प्रहार किया।

कुमार-सुन्दर ने फुर्ती के साथ पैंतरा बदला। उसने बलराम की बातें सुनीं पर साफ़-साफ़ नहीं। इसका कारण यह था कि उस वीर का चेहरा लोहे से आच्छन्न था। अतः उसका प्रायः आधा स्वर उसी में प्रतिध्वनित होकर रह जाता था। किन्तु हाव-भाव से कुमार सब कुछ समझ गया और अपने मामा प्रभृति लोगों से बोला —महाशय, आप पीछे खड़े रहें। इस अन्यायी दुष्ट ने मुझे युद्ध के लिए ललकारा है। अतः आप लोग मुझे पहले इससे संग्राम करने का अवसर दें।

वह ऐसा कह ही रहा था कि बलराम ने अपनी विशाल गदा का लक्ष्य कर व्याघ्र की भाँति उस पर दूसरा वार किया। यदि वह गदाघात नवयुवक पर पड़ जाता तो उसका काम तमाम हो जाता। किंतु उसके चञ्चल नेत्रों और पैरों ने उसकी प्राण रक्षा की। वह एक ओर उछल गया और गदा पृथ्वी में जा धँसी।

तत्पश्चात् दोनों वीर एक दूसरे के निकट पहुंच गए। उनकी अवस्था ठीक वैसी हो थी जैसी भेड़ियों और शिकारी कुत्ते की होती है। अब तक दोनों के साथी अलग खड़े होकर देख रहे थे। अब कुँअर रणधीरसिंह गरजता हुआ बोल उठा—"ख़बरदार! न्याय पूर्ण युद्ध होना चाहिये। न्याय-युद्ध में तुम चाहे स्वयं कृष्ण के बड़े भाई बलराम भी हो, तो भी यह तुमसे लोहा लेगा।"

उस अनुभवी सैनिक का कथन निरर्थक न था। बलराम की गदा बराबर काम कर रही थी। पर अपनी तीव्रगति तथा खड्ग-संचालन-कौशल के बल कुमार सदा साफ़ निकल जाता था और लपक-लपक कर तलवार की तीक्ष्ण नोंक से प्रतिद्वन्द्वी को घायल करता जाता था। वह गदा चलाते-चलाते शिथिल होने लगा। उसके पैरों तले की भूमि रक्त से भर गई। किन्तु तो भी उसके साहस तथा क्रोध में न्यूनता न आई थी। इसकी मानसिक शक्ति श्लाघ्य थी। अतः कुमार की विजय संशययुक्त एवं दूरस्थ सी प्रतीत होती थी।

ठीक इसी समय पृष्ठभाग से एक स्त्री का कातर स्वर सुन पड़ा; वह कुमार को पुकार-पुकार कर कहती थी, कुमार सुन्दर! सहायता करो-सहायता करो! बचाओ-बचाओ!!

कुमार ने पीछे मुड़कर देखा और पलक मारते ही समझ गया कि यह प्रणवीर की पुत्री तोषदा है। उसे जयनगर का एक सैनिक घसीटता आता था। उसके शरीर के ऊपरी भाग से सभी वस्त्र गिर पड़े थे। पास वाले मन्दिर में अनेक स्त्रियाँ आकर छिपी थीं। महाराज के सैनिक लूट मचाते हुए वहाँ आ पहुँचे थे और एक-एक स्त्री को खींचकर अपने साथ लिए जाते थे। तोषदा भी उनमें से एक थी।

कुमार अपनी उपकारिणी तोषदा को उस बुरी अवस्था से छुड़ाने के लिए दौड़ पड़ा ।

बलराम ने कहा—"मैं किसी की राह नहीं देखता ।" वह गदा घुमाता हुआ ऐसे शत्रु से आप से आप छुटकारा पाने की खुशी में पीछे हटने लगा।

कुँवर रणधीर ने कहा—"क्षमा करना। तुम्हें मेरी बाट जोहनी पड़ेगी। मैं अपने भानजे के प्रति ऐसे अपमान का सहन नहीं कर सकता ।" ऐसा कहकर उसने अपनी दोहत्थी तलवार से बलराम पर एक गहरी चोट की।

उधर कुमार ने देखा कि तोषदा को निर्मुक्त करना कोई साधारण बात नहीं है। बड़ी कठिनाई से उसे छुड़ाकर वह गली में खड़ा हुआ तो देखा कि उसके निकट और दूसरा कोई भी न था। जिस प्रकार गन्ध लेकर हरिण की खोजमें शिकारी कुत्ता झपट पड़ता है उसी प्रकार तोषदा की अरक्षित अवस्था का ध्यान न रखकर बलराम के अनुसंधान में कुमार भागना ही चाहता था कि वह अबला रो-रोकर अनुरोधन करने लगी—"भाई! तुम प्रशस्त कुल में उत्पन्न हुए हो। अबलाओं की लाज रखना तुम्हारा प्रधान धर्म है। मैं तुम्हारी मा की शपथ देकर विनय करती हूँ कि यहाँ मुझे निःसहाय छोड़कर न भागो । तुम भद्र पुरुष हो। मुझे मेरे पिता के यहाँ पहुंचा दो, जहाँ एक समय तुम्हें आशाबाला के सहित आश्रय मिला था।"

तोषदा की प्रार्थना कुमार के लिए दुःखद तो थी, किंतु अनिवार्य भी थी। जिस तरह इच्छा के विरुद्ध भी कोई बलवान् भूत-देव तन्त्र-मन्त्र के वशीभूत हो जाता है उसी तरह कुमार को भी तोषदा के साथ रणवीर के घर तक जाना पड़ा। उसके सामयिक आगमन से प्रणवीर और उसके घर, दोनों की रक्षा हुई, क्योंकि विजयी सेनाएँ नादिरशाही का अभिनय किया चाहती थीं।

इधर महाराज जयसिंह और राजासाहब चारदीवारी के एक अन्य भाग से घोड़ों पर सवार होकर नगर में प्रविष्ट हुए। दोनों व्यक्ति सिर-से-पैर तक लौह-कवचादि से ढँके थे। मानसिंह नर-रक्त में नहा-सा गया था। वह अति वेग से घोड़े को बढ़ाता था। लेकिन महाराज की गति में शासक की गम्भीरता एवं स्थिरता थी। उन दोनों ने चारों ओर आज्ञा दे दी कि लूट बन्द की जाय। इसका कारण यह था कि नगर में पहले ही से लूट मच गई थी। उनकी आज्ञा से सभी सेनाएँ जो तित्तर-बित्तर हो गई थीं— पुनः एकत्रित होने लगीं।

अन्य अफ़सरों की नाईं श्रीमान् कपूरसिंह भी अपने अधीनस्थ सैनिकों को एकत्र करने में व्यस्त थे। ऐसा करते हुए वह एक गली के मोड़ पर पहुँचे जो शोणभद्र को जाती थी। वहाँ उसने कुँवर रणधीर को देखा। वह निश्चित गति से नदी की ओर बढ़ रहा था। उसके हाथ में एक

नर-मुण्ड था। इसके सभी केश लोहू से लथ-पथ हो गये थे। इनको पकड़े वह मुंड को इस रीति से लिए जाता था जैसे कोई शिकारी थैली लटकाए जाता हो।

कपूरसिंह—" क्योंजी सिंहैला ! उस सड़े-गले मुण्ड को लेकर यहां क्या कर रहे हो।"

रणधीर—"भगवन्! मेरे भानजे ने एक काम आरम्भ किया था और प्राय: पूरा भी किया, किन्तु वह थोड़ा सा शेष रह गया था। अत: मैंने भी तस्वीर में आखिरी कूंची लगाई और सारा नजारा आपके सामने है। तुरतकी बात है कि एक बड़ा भला आदमी था। मैंने उसे अभी अपने हाथों से सुरपुर को भेजा है। प्रस्थान करते समय उसने प्रार्थना की कि मेरा सिर शोणभद्र में प्रवाहित कर देना।"

कपूरसिंह—" और क्या तुम उसके मुंड को सचमुच शोणभद्र की भेट करने जाते हो।" ऐसा पूछते हुए उसने सावधानी से उस भयावह नर-मुंड का निरीक्षण किया।

रणधीर—"हां! मैं इसे नदी में डालने जाता हूँ। क्या आपको मालूम नहीं कि यदि मरणावसन्न व्यक्ति की मांग पूरी न की जाय तो उसको अशांत आत्मा मनुष्य को सताया करती है। मैं रात भर गाढ़ी नींद लिया चाहता हूं।"

कपूरसिंह—"अजी, भूत-बूत की बातें क्या करते हो! मैं सत्य कहता हूं कि इस सिर का मूल्य इतना है कि जिस

की कल्पना तक तुम नहीं कर सकते। अब इस विषय में एक बात भी न बोलो। मेरे साथ चलो।"

रणधीर—"अच्छा ! कोई परवाह नहीं। मैंने उसके साथ कोई प्रण भी नहीं किया ! उसकी जिह्वा पूरी तरह हिल भी न सकी थी। जब वह जीवित था तभी मैं उससे न डरा तो फिर अब क्या डरूं।"

लंबोदर नगर के सर्व प्राचीन मन्दिर में ईश्वर की प्रार्थना की गई और रण-विजय के निमित्त सबों के मुँह से धन्यवाद सूचक शब्द निकल रहे थे। नगर में भी प्रायः शाँति स्थापित हो चुकी थी। अब जयसिंह और मानसिंह अपने-अपने गण्य-मान्य सभासदों तथा रईसों के साथ एक विराट् सभा में उपस्थित हुए। उस सभा का उद्देश पुरस्कार के पात्रों का अनुसंधान करना था। किसने युद्ध में कैसा कार्य किया और उसे क्या पुरस्कार मिलना चाहिए इसके निमित्त प्रमाण एकत्रित किए जाने लगे। सर्व प्रथम घोषणा की गई कि कृष्णपुरी रियासत तथा कुमारी आशा-बाला की प्राप्ति जिनका ध्येय हो वे अपने-अपने कार्य-प्रमाणों को उपस्थित करें। इस प्रकार की घोषणा होने की देर थी कि अनेकों व्यक्ति आ पहूंचे। उनमें प्रत्येक को आशा थी कि मेरा प्रमाण पर्याप्त होगा और पुरस्कार भी मुझे ही मिलेगा। किन्तु जब एक-एक करके उनकी परीक्षा होने लगी, तो उनकी आशा पर पानी फिरने लगा। क्रूरसिंह,

दौलतराय प्रभृति वीर ठीक उसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और वस्त्रादि लेकर आते थे, जिन्हें बलराम साधारणतः धारण करता था। उनमें से प्रत्येक का कथन था कि मैंने महंत की हत्या करने वाले का वध किया है, अतः पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए।

पुरस्कार प्राप्ति की इच्छा से सभी लोग आपस में कोलाहल मचाने लगे और झगड़ा करने को आरूढ़ हो गए। यह देख कर मानसिंह मन-ही-मन बहुत दुखित हुआ। उसने अपनी भूल समझी और सोचा कि आशाबाला के प्राण तथा सम्पत्ति व्यर्थ ही सङ्कट में डाले गये। किन्तु तो भी कुछ ऐसी युक्ति निकाली जाय जिसके द्वारा किसी भी पारितोषिक प्राप्ति की इच्छा रखने वाले की दाल न गले। वह ऐसा विचार ही रहा था कि कपूरसिंह भीड़ को चीरते हुए बीच में जा पहुँचे। वह रणधीर को उसी प्रकार खींचते हुए ला रहे थे, जैसे कोई व्यक्ति किसी अनभ्यस्त कुत्ते को रस्सी के सहारे खींच कर ला रहा हो।

वह जोर से बोले—"आप लोग कृपया इन हथियार तथा वस्त्रों को लेकर अलग हो जायँ। इन से काम नहीं चलेगा। केवल वही व्यक्ति, जिसने सचमुच बलराम का सिर काटा होगा, उसका मुंड दिखा सकता है।"

ऐसी बातें करते हुए उन्होंने रक्त-रंजित कपाल पृथ्वी पर पटक दिया। जिन लोगों ने बलराम को एक बार भी

देखा था, वे उसकी मुखाकृति से तुरन्त समझ गये कि यह उसी 'वनमानुष' का मुंड है ।

जयसिंह—"कर्पूरसिंह जी ! मैं आशा करता हूँ कि मेरे राजभक्त पंजाबियों में से ही किसी ने यह पुरस्कार पाया है ? ( मानसिंह अब तक चुप था, वह एक शब्द भी नहीं बोलता था ।)

कर्पूरसिंह ने उत्तर दिया—"हाँ प्रभो ! यह कार्य कुँअर रणधीरसिंह का है ।"

मानसिंह—"अच्छा ! परन्तु क्या यह भद्रपुरुष है ? क्या यह सचमुच प्रशस्त कुल में पैदा हुआ है ? यदि इन में किसी प्रकार की त्रुटि होगी तो हम लोगों की प्रतिज्ञा लागू न होगी ।"

कर्पूरसिंह—"जी हाँ ! इस विषय में तनिक भी संदेह का स्थान नहीं है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जयनगर तथा मानगढ़ के किसी भी सर्व प्राचीन प्रतिष्ठित कुल से इसका वंश कम प्रशस्त नहीं है। यह वीरभूमि पंजाब के,एक अति पुरातन काल से लब्ध प्रतिष्ठ वंश में पैदा हुआ है और आजीवन इसका चरित्र विमल वीरत्व से परिव्याप्त है ।"

मानसिंह ने सोचा—अब कोई उपाय नहीं है । मानगढ़ के अधीनस्थ समस्त अधिकारी वर्गों में आशाबाला का सौंदर्य अनुपम है । उसकी सम्पत्ति भी अतोल है। अब वह एक सिपाही को हाथ लगेगी, अथवा मठ के किसी कोने में

घुल-घुल कर जीवन बितायेगी। क्या करूँ? मैंने कोरी नादानी की।

कर्पूरसिंह—"राजासाहब! कृपया एक क्षण ठहरिये। इस अश्वारोही को कुछ कहना है, उसे सुनिये।"

वह सैनिक इतना स्थूलबुद्धि था कि इस बड़ी सभा में शीघ्रता से मुंह न खोल सका। जयसिंह के स्वभाव से वह परिचित था। उनके समक्ष वह काक की तरह टर्रा सकता था, किंतु यहां नहीं।

कर्पूरसिंह—"महाराज तथा राजासाहब! मैं अपने देशवासी तथा अति प्राचीन सहकारी के पक्ष में कुछ कहना अनिवार्य समझता हूँ। आशा है, आप लोग कृपया ध्यान देंगे। आप लोगों को शायद मालूम नहीं कि जब हम लोग जन्मभूमि पंजाब में थे, तब एक भविष्यवक्ता ने कहा था कि तुम्हारे कुलका भाग्य-सूर्य वैवाहिक-सम्बंध से उदित होगा। किंतु आप लोग स्वयं देख रहे हैं कि मेरी तरह यह भी पुरस्कार पाकर अब विशेष लाभ नहीं उठा सकता। किंतु इसने मेरे आदेशानुसार कार्य किया। बलराम को मारने के कारण इसने जो पुरस्कार प्राप्त किए हैं उन्हें यह अपने भानजे के पक्ष में विसर्जित करता है। इसका भी एक प्रधान कारण है। वह यह है कि उसी व्यक्ति ने वास्तव में बलराम को चारों ओर से छेंक-छांक कर प्रायः अधमरा कर दिया था।"

क्रूर—"किंतु इसमें एक अड़चन है। मामा पंजाब के किसी विख्यात वंश में उत्पन्न हो सकता है पर इसके कारण भानजे को भी उच्च कुलोद्भूत प्रमाणित नहीं किया जा सकता।"

कर्पूरसिंह—"जी नहीं; भानजा भी उसी प्राचीन वंश में पैदा हुआ है जिसके प्रवर्तक बाबा सुन्दरसिंह थे। उनकी प्रसिद्धि के विषय में कुछ भी कहना मानों सूर्य को दीपक दिखाना होगा। यही कारण है कि इस वीरका नाम 'कुमार-सुन्दर' रखा गया।"

क्रूर—"यदि आप सुन्दर की चर्चा करते हों तो मुझे अधिक कुछ कहना नहीं है। भाग्य ने उस नवयुवक का साथ दिया है। लक्ष्मी चंचला है। किस क्षण यह किस का द्वार देखेगी, कुछ पता नहीं चलता। एक बात अवश्य आश्चर्य जनक है। वह यह है कि पंजाबी लोग चाहे राजा हों, चाहे रंक, आवश्यकता आने पर एक दूसरे से सट जाते हैं।"

कर्पूरसिंह ने देखा कि अहंकारी मानगढ़ी वीर को अपरिमेय खेद हुआ है। अतः वह हँस कर बोले—"इतना ही नहीं। वे आवश्यकता पड़ने पर छाती से छाती भी लगा लेते हैं।"

राजा—"अभी हम लोगों को कुछ और भी जाँच करना बाकी रह गया है। देखें, इस नवयुवक के प्रति आशाबाला की कैसी अभिरुचि रहती है।"

क्रूर—"भगवन ! मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहता हूँ कि वह इस युवक के साथ अवश्य विवाह कर लेगी। केवल प्रस्ताव करने की देर है। कुमारी निस्संदेह आज्ञाका पालन करेगी। परन्तु मैं इसके भाग्य से ईर्ष्या नहीं करता। जो हो, विचार-शक्ति, धैर्य, तथा वीरत्व के द्वारा ही इसने संपत्ति, सम्मानास्पद स्थान एवं सौंदर्य की राशि उपलब्ध की है। आप निस्संकोच आशाबाला का 'कुमार-सुन्दर' से विवाह कर; अपने वचन का पालन करते हुए यश के भागी बनिए।"

मानसिंह—"तथास्तु !"

समाप्त